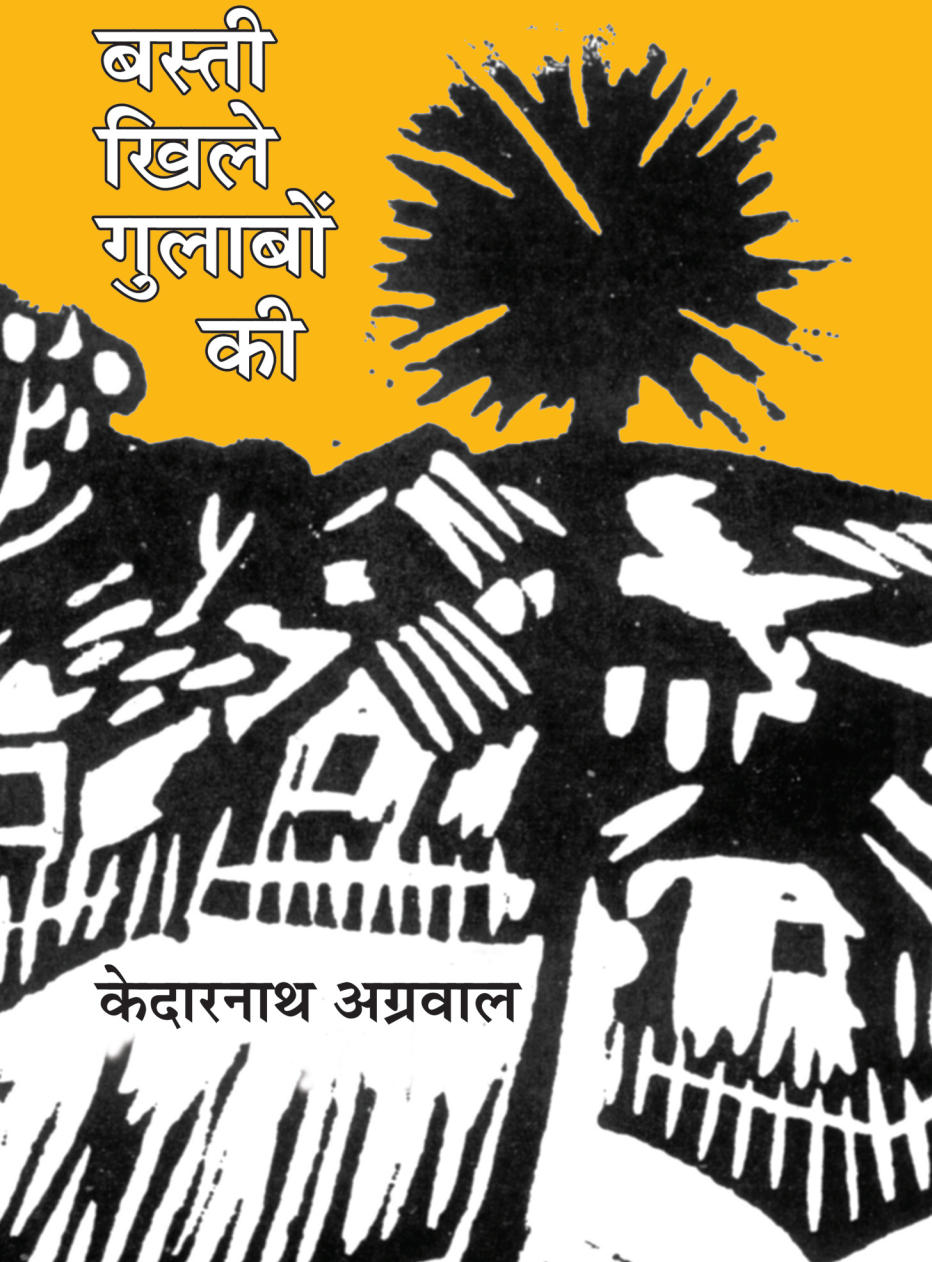


बस्ती
खिले
गुलाबों
की

केदारनाथ अग्रवाल



बस्ती खिले गुलाबों की
(मेरी रूस यात्रा : एक संस्मरण)

केदारनाथ अग्रवाल



साहित्य भंडार
इलाहाबाद 211 003

ISBN : 978-81-7779-214-0

✽

प्रकाशक

साहित्य भंडार

50, चाहचन्द, इलाहाबाद-3

दूरभाष : 2400787, 2402072

✽

लेखक

केदारनाथ अग्रवाल

✽

स्वत्वाधिकारिणी

ज्योति अग्रवाल

✽

संस्करण

साहित्य भंडार का

प्रथम संस्करण : 2010

✽

आवरण एवं पृष्ठ संयोजन

आर० एस० अग्रवाल

✽

अक्षर-संयोजन

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

56/13, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद-2

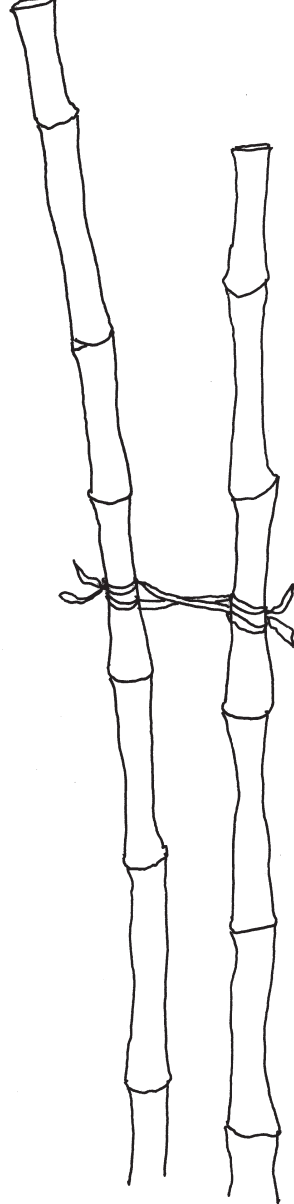
✽

मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

148, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद-3



मूल्य : 75.00 रुपये मात्र

बस्ती खिले गुलाबों की
(मेरी रूस यात्रा : एक संस्मरण)



प्रकाशकीय

इस संकलन का प्रकाशन 'साहित्य भंडार' के प्रथम संस्करण के रूप में सम्पन्न हो रहा है। केदारजी के उपन्यास 'पतिया' को छोड़कर, उनके शेष समस्त लेखन को प्रकाशित करने का गौरव भी 'साहित्य भंडार' को प्राप्त है। केदारनाथ अग्रवाल रचनावली (सं० डॉ० अशोक त्रिपाठी) का प्रकाशन भी 'साहित्य भंडार' कर रहा है।

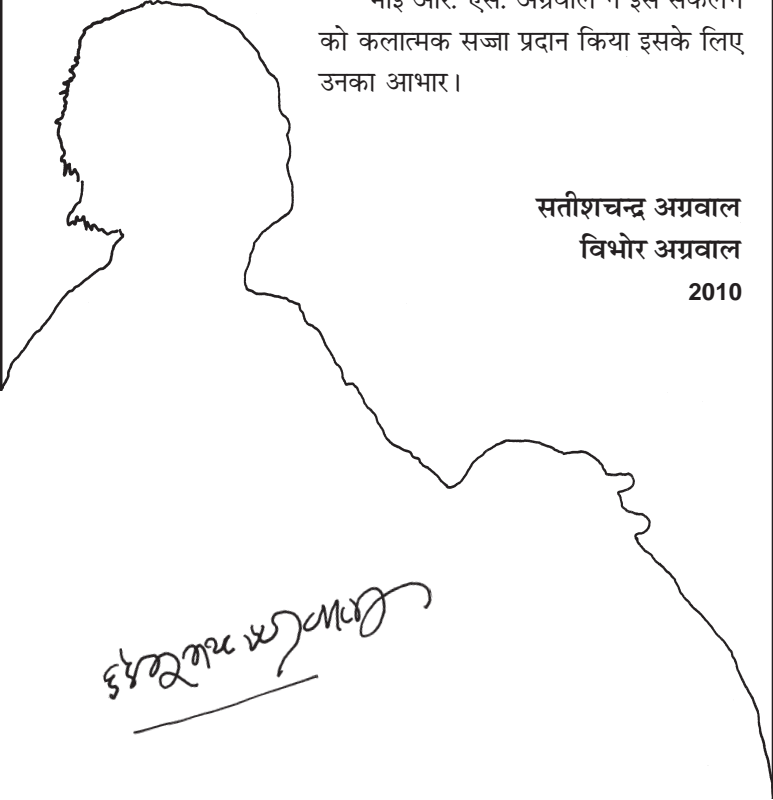
एक तरह से केदार-साहित्य का प्रकाशक होने का जो गौरव 'साहित्य-भंडार' को मिल रहा है उसका श्रेय केदार-साहित्य के संकलन-संपादक डॉ० अशोक त्रिपाठी को जाता है उसके लिए 'साहित्य-भंडार' उनका आभारी है। यह गौरव हमें कभी नहीं मिलता यदि केदार जी के सुपुत्र श्री अशोक कुमार अग्रवाल और पुत्रवधु श्रीमती ज्योति अग्रवाल ने सम्पूर्ण केदार-साहित्य के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार हमें नहीं दिया होता। हम उनके कृतज्ञ हैं।

भाई आर. एस. अग्रवाल ने इस संकलन को कलात्मक सजा प्रदान किया इसके लिए उनका आभार।

सतीशचन्द्र अग्रवाल

विभोर अग्रवाल

2010



सतीशचन्द्र अग्रवाल

समाजवादी उद्देश्य की महत्ता से
सुसंस्कृत हो रहे सोवियत बच्चों को,
जिनकी क्षण-दो-क्षण की भेंट मेरी
अमोल थाती बन गयी है और यात्रा के
दौरान मिले तमाम रूसियों तथा भारतीयों
की स्मृति को, जिन्हें मैं कभी भुला नहीं
सकता।

— केदारनाथ अग्रवाल

रूस की मेरी यात्रा

गत 11 मई को पालम एयरपोर्ट से लगभग 9.15 बजे, सबेरे मैं अपने अन्य साथियों के साथ, एरोफ्लोट से, सोवियत संघ की राजधानी मास्को के लिए उड़ा। यह मेरी पहली हवाई-यात्रा थी, इसलिए एक हल्की-सी परेशानी और घबराहट महसूस कर रहा था कि ऐसा न हो कि कोई दुर्घटना हो जाय और मैं फिर अपनी भारत-भूमि को न लौट सकूँ। लेकिन वर्षों की मनोकामना पूरी हो रही थी, इसलिए मेरे अन्दर उमंग और उत्साह उछाल ले रहा था और उस उछाल में शंका की एक हल्की-सी छाया झलमला जाती थी। हवाई जहाज एक बड़ी लम्बी-सी मछली की तरह था, जिसके पेट के भीतर हम और दूसरे यात्री बैठ गये थे। इस पेट में एक तरफ तीन आराम कुर्सियों की पंक्तियाँ, आगे-पीछे, लम्बान में लगी थीं। बीच में एक काफी चौड़ी गैलरी थी, जिसमें लोग आ-जा सकते थे और जिसमें यान की परिचारिकाएँ ट्राली में खाने-पीने का सामान रखकर ले आतीं और वितरण करने के बाद वापस चली जाती थीं। इस गैलरी की दूसरी बगल में आराम कुर्सियों की वैसी ही आगे-पीछे, दो-दो की पंक्तियाँ थीं। हम लोगों के बक्से वहाँ पहले ही पहुँचकर एक प्रकोष्ठ में अलग रख दिये गये थे। हम लोगों में से लगभग हरएक के पास अपना-अपना ब्रीफकेस व किसी-किसी के पास एक-एक हैण्डबैग भी था, जिसमें सुविधा की कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं। वे सब कुर्सियों के पास ही रख लिये गये थे। यान के अन्दर का वातावरण शान्त और प्रिय था। न कोई हल्ला था, न कोई हलचल थी, लोग अपनी-अपनी जगह आराम से बैठे थे। यात्रियों में औरतें भी थीं, बच्चे भी थे और पुरुष भी थे। दोनों तरफ की कुर्सियों के ऊपर, यान की छत से कुछ नीचे, सामान रखने के लिए टॉटें बनी थीं और ठीक कुर्सियों के ऊपर यान की छत में पेंच लगे हुए थे, जिन्हें घुमा देने से सीटों पर ठण्डी हवा आने लगती थी और बन्द कर देने से रुक जाती थी। हर बगल वाली सीट के पास ही दोनों तरफ गोलाकार शीशे की पारदर्शी खिड़कियाँ लगी थीं, जिनसे यात्रीगण बाहर का दृश्य बराबर देखते रह सकते थे। हर खिड़की के पास ही एक हल्के नीले रंग का छोटा पर्दा लगा था, जिसे खिसका देने पर खिड़की का शीशा उसी रंग का हो जाता था और तब बाहर का दृश्य भी उसी के हल्के रंग से रंगा हुआ दिखायी देने लगता था। हरएक कुर्सी में एक-एक बेल्ट लगी हुई

8 / बस्ती खिले गुलाबों की

थी, जिसे उड़ने से पूर्व और उतरने के पहले, यात्री को अपनी कमर में बाँध लेना पड़ता था। उड़ने से पहले यान-परिचारिका एक ट्रे में लेमन-ड्राप्स और टॉफी लाती थी और हर-एक यात्री को देती थी, जिसे उसे खाना पड़ता था, ताकि उड़ने और उतरने के बीच कोई मानसिक कष्ट न हो या कि मिचली वगैरह न आये।

यान उड़ने को हुआ, तो उसका शरीर चालू हुए इंजन की धकधकाहट से हल्का-सा थरथराने लगा और हल्की-सी आवाज यान के अन्दर पहुँचने लगी और हमसब यात्रियों को वह आवाज सुनायी देने लगी; लेकिन वह ऐसी नहीं थी कि उसके सुनते रहने से कोई कष्ट हो या कान सुन्न हो जाएँ। मेरे साथ के किसी यात्री ने आवाज से बचने के लिए कान में न तो अपनी उँगली लगायी, न रुई की कोई ठेपी। यान जहाँ खड़ा था, वहीं वह कुछ देर तक धड़धड़ाता रहा और फिर उसके बाद जमीन पर उसके पहिये सरकने लगे और वह बड़ी मछली, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी जैसे हवा के सागर में भीतर घुसने लगी। वहाँ से इस तरह चलकर और थोड़ी दूर आकर वह मछली एक जगह फिर रुक गयी और अब अधिक वेग से थरथराने लगी। यान का इंजन वेग से चालू किया गया और वह अपनी पूरी ताकत से जोर पकड़ रहा था। कुछ मिनटों के बाद यान वहाँ से आगे चला और अब उसकी गति तेज-से-तेज होती गयी। कुछ दूर जाकर उसके पहिये जमीन से ऊपर उठे और वह, गन्तव्य मार्ग की ओर हवा में सरसराता हुआ ऊपर उठता चला गया। मैं खिड़की के पास बैठा अचरज से भरा था। इसलिए बराबर खिड़की के बाहर का दृश्य देखता ही रहा। दिल्ली नीचे दूर होती जा रही थी, बड़ी से छोटी होती जा रही थी और फिर थोड़ी देर में यान के ऊँचाई पा लेने पर गायब भी हो गयी।

मुझे अपना गाँव याद आया, अपने पुरजन व परिजन याद आये। मेरा बाँदा मुझे याद आया। लड़कपन में लढ़ी पर की हुई यात्राएँ याद आयीं। इक्का, रिक्शा, ताँगा और मोटर की मेरी छोटी-बड़ी यात्राएँ और रेल की लम्बी यात्राएँ भी दिमाग में कौंध गयीं। यह सब शायद इसलिए हुआ, क्योंकि इन्हीं सवारियों से मेरा जीवन जुड़ा हुआ था और अब मैं इन्हें छोड़कर एक बड़े वेगवान वायुयान पर चढ़ा दूर देश की यात्रा पर जा रहा था, जहाँ मेरा कोई स्वजन नहीं था, मेरा कोई मित्र नहीं था और हो सकता है कि जहाँ मैं अकेला महसूस करता। इसके बावजूद भी जब यान बादलों की परत भेदकर उनसे ऊपर उठ गया और धरती का धरातल पूर्णतया लोप हो गया और यान के दोनों तरफ ऊपर और नीचे भी आकाश और हवा ही रह गयी, तो मुझे यह दृश्य देखने में आनन्द आने लगा। मैंने देखा—लगातार बराबर तरह-तरह की आकृतियों के बादल फैले-बिखरे, बैठे, खड़े इकट्ठा हैं और उनका सिलसिला अनन्त और अछोर है। उन बादलों की आकृतियाँ

बहुत कुछ कभी-कभी क्या ज्यादातर ही बूढ़े आदमियों की व जवानों की व औरतों-बच्चों की लगती थीं। वे कहीं सभा में बैठे सामूहिक संलाप में संलग्न मिले, तो कहीं लेटे और पसरे, एक-दूसरे से आलिंगित और आलिस मिले। कोई पगड़ी बाँधे था, तो कोई शरीर पर लम्बा चोगा पादरियों जैसा पहने था। औरतें, तरह-तरह के केशविन्यास किये हुए, मुलायम, स्निग्ध बादलों के ही खुले और अधखुले वस्त्र पहने थीं। कहीं-कहीं तो ऐसा भी लगा कि दूध के समुद्र में आर-पार मलाई जम गयी है और कहीं-कहीं ऐसा भी लगा कि धुनी हुई मुलायम रुई के बड़े-बड़े ढेर ज्यामितिक ढंग से, आप-ही-आप इकट्ठा हो गये हैं। मेरे कवि मन को यह सब बहुत भला लगा और मैं बराबर इससे प्रभावित होता रहा। मेरी कल्पना काम करती रही और मैं बादलों के देश में निःसंकोच बिहार करता रहा। मैं यह भूल गया कि मैं यान में हूँ और यान से बाहर नहीं हूँ। मैं यह महसूस करता रहा कि मैं उनके पास पहुँच गया हूँ और मैं उन्हीं के देश का सौन्दर्य अपनी इन्द्रियों से आत्मसात् कर रहा हूँ। मुझे कालिदास याद आये, निराला और पन्त याद आये। शेली भी याद आये, उनकी अमर रचनाएँ याद आयीं। लेकिन मुझे ऐसा लगा कि जैसे इन कवियों ने भी ऐसे दृश्य नहीं देखे जैसे दृश्य मैंने देखे हैं। मुझे आज तक कोई ऐसी कविता नहीं मिली, जिसमें कवि स्वयं बादलों के परिवार का सदस्य होकर उन्हीं के बीच जी रहा हो। मेरी अनुभूतियाँ नितान्त भिन्न थीं। मैं बादलों का कुटुम्बी हो गया था, बादलों की हरएक भंगिमा को देख रहा था और वह क्या कर रहे हैं या कि उनका मनोजगत् कैसा है, यह सब जान रहा था और इस सबसे मुझे बड़ा आत्मसन्तोष और सुख मिल रहा था। ऐसी थी यह बादलों के साथ जी रही मेरी जिन्दगी कि मैं कविता लिखना भूल ही गया और अब यह इच्छा हुई कि मैं बादलों की कविता लिखूँ।

यान को कहीं रुकना नहीं था। सीधे मास्को पहुँचना था। बीच-बीच में, कभी-कहीं, नीचे होकर जब वह उड़ता था, तब जमीन दिखायी दे जाती थी और कई बार तो ऐसा लगा कि जमीन में हरे-हरे खेत बिछे हैं और मकान तो ऐसे दिखे कि जैसे किसी ने जमीन पर पटिया रख दी है और नदियाँ पतली, बहुत पतली, नालियों की लकीरों-सी लगीं। रास्ते कमरबन्द की तरह पतले दिखे। मुझे मार्ग में कहीं कोई जानवर या आदमी नीचे चलता हुआ नहीं दिखायी दे सका।

यान में हमें यान परिचारिका ने पहले मिनरल वाटर व शर्बत दिया, जिसे हम लोगों ने बड़े चाव और रुचि से पिया।

फिर दोपहर का भोजन, ट्राली में भरकर वह लायी और उसने हरएक को दिया। हम लोगों ने अपने आगे सीट की पीठ में लगी छोटी-छोटी मेजों को अपनी तरफ खोला

10 / बस्ती खिले गुलाबों की

और उन्हीं पर अपने भोजन की ट्रे रखी। मैं निरामिष भोजी था। इसलिए मैंने मांस नहीं लिया। मुझे खाने में गोल डबल रोटी, ब्राउन ब्रेड के कतरे, मक्खन और पनीर, खीरा और हरी पतली सब्जी का डण्डल, नमक व मिर्च के छोटे पैकेट्स, शर्बत का छोटा गिलास, मिनरल वाटर की बोतल और पैकेटबन्द छुरी-काँटे मिले। मैंने मजे से खाया और खाते-खाते बाहर के दृश्य भी देखता रहा। मेरी बगल में नवभारत टाइम्स के न्यूज एडिटर श्री हरिदत्त शर्मा बैठे थे। वे भी निरामिष भोजी थे। उन्होंने भी यही किया। उनके बगल में श्री गुलाम रब्बानी ताबाँ बैठे थे। वे मांसाहारी थे। उन्होंने अपना भोजन स्वाद से किया। हम लोगों के साथ दिल्ली की कु० शान्ता गाँधी व मद्रास के श्री चोखलिंगम व केरल के उपन्यासकार शंकर पिल्लई व हिन्दी के लेखक और कवि श्री उपेन्द्रनाथ अशक व कलकत्ते के श्री चिन्मोहन सेहानबीस व कु० चारु सक्सेना थीं। उन लोगों ने भी अपनी-अपनी पसन्द का अपना-अपना भोजन किया। मैं नहीं जानता कि इन लोगों के मन में क्या हो रहा था।

यान की गति तेज थी। दूरी छोटी होती जा रही थी। मास्को नजदीक आनेवाला था। दोपहर के तीन या साढ़े तीन बजे के लगभग हमारा यान मास्को पर उतरा। अब एयरपोर्ट पर पाँच बजे शाम तक हम लोगों के कागज-पत्र की जाँच-परख होती रही और मैं अब पिछले दृश्य को भूलकर मास्को के एयरपोर्ट पर सोवियत संघ के बारे में सोचने लगा। मुझे उसका इतिहास याद आया। उसकी अक्टूबर-क्रान्ति याद आयी। मुझे महान लेनिन याद आये और उनकी प्राणलेवा संकट की घड़ियाँ याद आयीं, जब वहाँ के निवासी जार के खिलाफ, स्थान-स्थान पर लड़ाई लड़ रहे थे और पुरानी भू-दासता व सामन्तवाद को धूलधूसरित करके समाजवाद की स्थापना के लिए प्राण दे रहे थे। मैं अन्दर से रोमांचित हो गया था और उस दिन वहाँ पहुँचकर अपने को बड़ा धन्य समझने लगा था। मुझे उस देश के दर्शन मिलेंगे, जिसे देखने की लालसा दिन-पर-दिन तीव्र होती जा रही थी। यह दिन मेरे लिए बड़े गौरव का दिन था। गौरव का दिन इसलिए था कि सोवियत संघ की वजह से आज दुनिया में शोषण समाप्त करने के लिए हरतरह की लड़ाई लड़ी जा रही है और हरएक देश में मनुष्य स्वाधीन होकर अपने विकास की ओर प्रयाण करने के लिए तत्पर है।

वहाँ से हम, कार द्वारा, रूसिया होटल ले जाये गये। यहीं हमें ठहराया गया। मैं उसके कमरा नं० 2254 में ठहरा। कमरे में टेलीविजन सेट, रेडियो लगा था। वह साफ-सुथरा व सुसज्जित था। साथ में बाथरूम था, जहाँ ठण्डे व गर्म पानी का प्रबन्ध था। हम लोगों ने चाय-काफी आदि पी, फिर रात का भोजन किया। इसके पहले हम

लोग मास्को शहर शाम को देख आये थे। मास्को और लुलुम्बा विश्वविद्यालय बाहर से देखा, नगर की सड़कों पर इधर-उधर कई जगह घूमे। नगर की सफाई व व्यवस्था देखकर मैं तो बहुत प्रभावित हुआ। सड़कों के इधर-उधर ही वृक्षावली लगी थी। वृक्षावलियों के बीच से आदमियों के चलने का पथ बना था, बेंचें पड़ी थीं और कहीं कोई गन्दगी नहीं थी। जो लोग आते-जाते दिखे वे सन्तुष्ट और प्रसन्न दिखे। नगर में, कहीं कोई तनाव या उदासी नहीं दिखी। मुझे तो वहाँ की इमारतें तक सहृदय लगीं और ऐसा लगा जैसे बड़ी शान से कह रही हों कि हम दूसरे असमाजवादी देश के नगरों की ऊँची इमारतें नहीं हैं कि अपने वहाँ के आदमियों को निगल जाएँ, वह खो जाएँ और उनका व्यक्तित्व दूसरों के दबाव से दब जाए। वे यह भी कह रही थीं कि हम अपने नगरवासियों का स्वागत करती हैं। उन्हें सुख-सुविधा व आराम देती हैं और उन्हें अपनी छाया में लेकर उनके दुःख-दर्द मेटती हैं और उन्हें रोज कर्मण्य जीवन जीने के लिए अपने से बाहर खेतों, फैक्टरियों, मदरसों, अनुसन्धान शालाओं, दूकानों और कामकाज के विभिन्न स्थलों को भेजती हैं कि उन्हें युद्ध की विभीषिका फिर से न देखनी पड़े और वे संसार में रहकर शान्ति से समानता के आधार पर जीवनयापन कर सकें। मैं बड़ा खुश हुआ।

मास्को देखकर मैं प्रभावित हुआ और मैंने यह कविता लिखी-

देखा मास्को
 जनता का जीवन्त नगर,
 सबके लिए खुला,
 दगादार के लिए-दुष्ट के लिए बुरा,
 सहज बन्धु के लिए सनेही,
 सुखकर सगा, भला।
 मानव,
 गले कहीं दुनिया में,
 यहाँ न गलता,
 शोषण चले कहीं
 दुनिया में,

12 / बस्ती खिले गुलाबों की

यहाँ न चलता,
अच्छी, सच्ची, राजनीति है
पूरी पक्की,
जन-जन की हो रही इसी से
खूब तरक्की।

फिर 12 मई को सबेरे का नाश्ता करके हमलोग मास्को के एयरपोर्ट पर आये। यहीं हम फिर 10 बजे दिन को ऐरोफ्लोट पर चढ़े और लेनिनग्राद पहुँचने के लिए उड़ें। धूप चमक रही थी। आसमान का नीलापन श्वेताम्बरी हो रहा था। एक घण्टे की यात्रा के बाद हमलोग लेनिनग्राद के एयरपोर्ट पर पहुँचे। एयरपोर्ट पर यहाँ मास्को से अधिक ठण्डक थी। मुझे गरमकोट पहने रहने पर भी अन्दर तक ठण्डक मालूम हुई। लेकिन वह भी सह्य थी। इसलिए मैंने परवाह नहीं की। हमलोग कारों द्वारा एस्टोरिया होटल पहुँचाये गये। कारें सरकार की होती हैं। रास्ते में काफी समय लगा। धूप वहाँ भी थी। सड़कें साफ-सुथरी, लम्बी-चौड़ी चमचमा रही थीं। दोनों तरफ लम्बे-लम्बे चले गये पेड़ों की पंक्तियाँ, झीनी-झीनी छाया जमीन पर छोड़ रही थीं। बच्चे, औरतें व आदमी आते-जाते प्रसन्न मुद्रा में दिखे। यहाँ की इमारतें भी ऊँची और भव्य तथा कई मंजिलों की हैं। पत्थरों की बनी हैं। मैं एस्टोरिया होटल के कमरा नं० 512 में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। शाम को 4 बजे से 6 बजे तक विण्टर पैलेस देखा। यहाँ 1500 कमरे हैं, म्यूजियम है, कमरे बड़े हैं। देखते-देखते हैरत हुई। मुझे इस नगर की सांस्कृतिक अभिरुचि का गहरा एहसास हुआ, जब मैंने विण्टर पैलेस के भीतर का म्यूजियम देखा। रूसी लोग अपनी तमाम तरह की भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों की ऐसी देखरेख करते हैं और उन्हें ऐसे सुरक्षित रखते हैं कि जैसे वे उन्हें प्राण से भी अधिक प्यारी हैं। यही बात रह-रहकर मुझे मोह रही थी और मैं उनके प्रति मन-ही मन कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। जो लोग यह कहते हैं कि रूसी लोग प्राचीन के प्रति अत्यन्त अनुदार हैं और वे प्राचीन सभ्यता की समस्त देन को विनष्ट कर देते हैं और वे निरंकुश और निर्मम हैं, उनकी यह बात मुझे सरासर गलत मालूम हुई। रूसी लोग इतिहास को और उसके प्रत्येक चरण के चिह्नों को अपने लिए सुरक्षित रखते हैं, ताकि वे आज भी यह कह सकें कि कैसे, किन-किन परिस्थितियों से होकर आज वे समाजवाद को अपने यहाँ अवतीर्ण कर सके। मुझे याद है कि नाजी लोग या अमरीकी फौजी लोग या कि दूसरे असमाजवादी देशों के फौजी शासक जब जहाँ अपने पाँव रखते हैं, तब वहाँ

की सभ्यता और संस्कृति के समस्त इतिहास की उपलब्धियों को चकनाचूर कर देते हैं। इसलिए मुझे यह देखकर विश्वास हुआ कि वे जहाँ और जब भी गये होंगे या जायेंगे, उन्होंने वहाँ भी उसकी ऐतिहासिक उपलब्धियों को नष्ट न किया होगा और न वे करेंगे आगे भी।

सोवियत संघ की राजनीति समाजवादी राजनीति है, इसलिए वह सही अर्थों में मानववादी है और सच ही जनतान्त्रिक स्वभाव की है।

इस विन्टर पैलेस यानी शिशिर प्रासाद पर 26 अक्टूबर को क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था और साथ ही चोदनोवंस्की को इसका कमाण्डेंट नियुक्त किया गया था, जिसके तुरन्त ही बाद वह लेनिन से मिलने स्मोल्नी गये थे। यह प्रासाद मुझे प्रभावित कर सका और मैंने अपनी नोट बुक में उसे देखकर ही लिखा : Simply grand! इसे भीतर-बाहर से देखता रहा और देखते-देखते उन दिनों का इतिहास सोचता रहा और इतिहास को सोचकर तब की गयी क्रान्ति का महत्त्व आँकता रहा। अब यह प्रासाद रूस की सारी जनता का प्रासाद है। इसे देखने देश-विदेश की जनता आती है और देख-देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर चकित रह जाती है। शाम के छः बजे चुके थे। प्रासाद बन्द होने जा रहा था। इसलिए उसे देखकर फिर होटल वापस आया। मैंने देखा कि आठ बजे रात को भी सूरज पश्चिमी आसमान में काफी ऊँचे चमक रहा था। रात दस बजे सूरज सोया था। रात होटल में सोता रहा और जब तीन बजे सुबह उठा, तब देखा कि सूरज का प्रकाश फैल चुका था।

दूसरे दिन, तेरह मई को दस बजे दिन, होटल से बस से चला और PESKEREVSKOE-MEMORIAL देखने पहुँचा। यह 26 हेक्टेयर क्षेत्रफल में था। प्रवेश करते ही सामने दिखायी दी विशाल खड़ी हुई, प्रतीकात्मक माँ की मूर्ति। बताया गया कि यह 1942 के वीरों का समाधिस्थल है। यहाँ लगभग पाँच लाख आदमी दफन हुए थे। यहीं पर कवयित्री ओल्गा बेल्ग्रास भी दफन हुई हैं। मैंने देखा कि तमाम बच्चे आये थे और साथ में फूल-मालाएँ भी लाये थे। वे सब समाधियों पर मालाएँ चढ़ा रहे थे। समाधियों पर हँसिए-हथौड़े अंकित थे। यहाँ का वातावरण मर्मस्पर्शी था। करुणा से द्रवित प्रत्येक दर्शक शान्तभाव से वीरों को नमन कर रहा था। मैं भी सन् '42 के रक्त-पात और तब की की गई नृशंस-बर्बरता को देख-देखकर क्षण-प्रति-क्षण विचलित होता रहा और हत्या करनेवालों को कोसता रहा और मरनेवालों की याद कर-

कर उनको अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता रहा। सोवियत सरकार ने इस स्थल को सुरक्षित करके आनेवाली पीढ़ियों को यह जता दिया है कि युद्ध कितना भयंकर और विनाशकारी होता है कि फिर से उसकी पुनरावृत्ति कोई न करे। टेलीविजन वाले वहाँ आये हुये थे, उन्होंने भी प्रसारण के लिये उस समय चित्र लिये।

साढ़े ग्यारह बजे दिन को हम लोग Smolni (स्मोलनी) पहुँचे। यही वह स्थान है, जहाँ रात के सवा दो बजे चोदनोवस्की लेनिन से मिले थे। तब लेनिन कमरे में काम करते हुए नयी आज्ञासिधियों के मसविदे लिख रहे थे। इसके बाद यहीं सोवियतों की दूसरी काँग्रेस की बैठक हुई और मजदूरों, सैनिकों तथा किसानों के नाम लेनिन ने एक अपील लिखी, जो काँग्रेस ने स्वीकार की। उस अपील का एक अंश इस प्रकार है—

‘मजदूरों, सैनिकों और किसानों के बहुमत की इच्छानुसार पेत्रोग्राद में हुए मजदूरों और नगर-सेना के विजयी विद्रोह का समर्थन पाकर काँग्रेस सत्ता अपने हाथ में लेती है। . . . अस्थायी सरकार का तख्ता उलट दिया गया है. . . सैनिकों, मजदूरों और कर्मचारियों! क्रान्ति और जनवादी शान्ति का भाग्य तुम्हारे हाथों में है—क्रान्ति जिन्दाबाद।’ लेनिन ने युद्ध को मानव जाति के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध घोषित किया था। यहीं लेनिन ने भूमि-सम्बन्धी वह आज्ञा निकाली थी, जिसके अनुसार सारी भूमि की स्वामिनी जनता मानी गयी और यहीं लेनिन के नेतृत्व में दूसरी काँग्रेस ने सरकार बना दी और जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी को देश का शासन सौंपा। पहले यहाँ सम्प्रन्ति और प्रतिष्ठित कुटुम्बों की औरतों के पढ़ने के लिए कॉलेज था। यह 1808 में बनी इमारत है। यहीं ब्रोत्स्की चित्रकार की सन् 1927 में बनायी हुई लेनिन की आदमकद, रंगीन तस्वीर देखने को मिली। तस्वीर में लेनिन खड़े हैं, अपनी सहज-साधारण गरिमा के साथ और उनके पीछे बह रही है एक नदी। दीवार पर पूरा संविधान सुनहरे अक्षरों में लिखा है। इस तस्वीर को देखते-देखते यही सोचता रहा कि कितना महान् था लेनिन, जो अपनी जनता के लिए ही रात-दिन जीता-जागता, सोचता-विचारता और क्रान्ति की निश्छल अगुआई करता था। काश, ऐसे नेता हमें भी हमारे देश में मिलते-हमारा देश धन्य होता।

फिर मैं वहाँ से लेनिन का एक दूसरा घर देखने गया। वह भी लेनिन का म्यूजियम बना दिया गया है। यहाँ लेनिन का रेकार्डेड भाषण, उन्हीं की आवाज में सुना गया। मैं उसे समझ तो नहीं सका, लेकिन स्वरों के आरोह और अवरोह और व्यंजनों के प्रवाह से मुझे यह लगा कि उनके भाषण में उतार-चढ़ाव नाममात्र को था और वह कोई दो-टूक बात कर रहे थे, इस म्यूजियम को देखकर बहुत-सी और बातें मालूम हुई कि लेनिन

यहाँ कैसे रहे और किसके साथ व कब तक रहे।

वहाँ से होटल आया। खाना खाया, फिर सवा पाँच बजे 'फ्रेंडशिप पैलेस' देखने के लिए गया। यहाँ इण्डो-सोवियत कल्चरल सोसाइटी का स्वामित्व है। लेनिनग्राद की म्यूनिसिपैलिटी ने, दूसरे महायुद्ध से नष्ट हो जाने पर, इसका पुनरुद्धार कराया था और इसे उक्त सोसाइटी को सौंप दिया था। इसमें, नष्ट होने के पहले, सोने का तमाम काम दीवारों पर अंकित था। युद्ध के बाद चौदह किलो सोना लगाकर म्यूनिसिपैलिटी ने उसे वैसा ही रूप दे दिया, जैसा पहले था। यहीं कई लोगों से बातचीत हुई। चाय-पानी हुआ। यहीं मिले: (एक) विक्टर बालिन, प्राध्यापक भारतीय भाषा-विभाग, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय (दो) रूदोल्फ वी० वाराबनोब, 1920 × 11 लेनिनग्राद फोण्टैन्का-21, (तीन) पेतचेंको वाई०, ओरियण्टल फैकल्टी, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, लेनिनग्राद। साहित्य पर और कला पर बातें होती रहीं। यहीं पेतचेंको महोदय ने मुझे एक किताब दिखाई। उसमें लेनिन के ऊपर लिखी मेरी कविता का रूसी अनुवाद छपा था। अपना नाम तो मैंने पढ़ लिया, लेकिन कविता नहीं पढ़ सका। तब उन्होंने उसे पढ़ा और अर्थ बताया, निश्चय ही वह मेरी थी। यह बड़ी सुखद बात हुई। मैं प्रसन्न हुआ कि इस दूर विदेश में भी मेरी कविता को सराहा गया और मेरे आने पर पेतचेंको महोदय ने मुझे पढ़कर सुनाया। काव्य में ऐसी रुचि बहुत कम लोगों में होती है। लेनिनग्राद में काव्य-कला, साहित्य और संस्कृति के प्रति निश्चय ही अत्यधिक अभिरुचि मिली। यहाँ भी टेलीविजन के लोग साथ आये थे और अपना काम कर रहे थे। हम लोगों की तस्वीरें खिंचती रहीं। यहीं प्रसिद्ध रूसी लेखक टॉलस्टाय के परिवार की एक महिला ने आकर हिन्दी में मेरा अभिवादन किया और अपना परिचय दिया और मेरी कविता में अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। वे हिन्दी बोल रही थीं। अच्छी-खासी तन्दरुस्त महिला हैं-रंग गेहुँआँ है। देखने में यूरोपियन नहीं लगतीं। स्वभाव से शालीन और मर्यादित। मुझे इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं इन्हें देखकर उसमें टॉलस्टाय की मूर्ति देखता रहा।

फिर रात आयी और होटल में सोया—

चौदह मई को साढ़े दस बजे दिन होटल से दास्तोवस्की स्ट्रीट गये। यहाँ उनका घर था। यह रूस के महान् उपन्यासकारों में हैं, किराये के मकान में रहते थे। लेनिनग्राद में ही कई घरों में किराये पर रहे थे। यह घर उन्हीं में से एक था। इसी घर में उनके नाम का म्यूजियम है। यह म्यूजियम दो भागों में है। एक भाग में उनका साहित्य संगृहीत है, दूसरे भाग में उनके कॉलेज और बचपन के दिन बीते थे। वे 13 अक्टूबर, 1821 को पैदा हुए थे। इनकी माँ, मास्को के एक व्यापारी की पुत्री थीं, जिनका देहावसान 1837 में

हुआ। इनके पिता ने इन्हें पेत्रोग्राद के इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ाया। लेकिन दास्तोवस्की को, उनकी प्रतिभा ने, इंजीनियरी से हटाकर उपन्यासकार बनाया और वे मानवमन की अतल गहराइयों के सूक्ष्म चित्रण के विश्वविख्यात उपन्यासकार हो गये। इनके उपन्यासों में अपराधी वृत्तियों के नर-नारियों के मनोजगत् का बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। इनके उपन्यासों के पात्रों से तब के आदमियों के जीवनवृत्त का आकलन मिलता है। यह मालूम होता है कि उस समय के गये-गुजरे लोग, अपने समाज में, कैसे जीवन-यापन करते थे और किस बुरी तरह से सञ्चस्त और उपेक्षित रहते थे और इसपर भी किन-किन तरीकों से जिन्दगी जीते और अपनी आयु अन्धकार को समर्पित करते थे। इसी म्यूजियम में उनकी पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ देखीं। छपी हुई उनकी पुस्तकें देखीं। तब के छपे हुए अखबारों में उनके बारे में टिप्पणियाँ देखीं। उनके चित्र भी देखे। उनके उपन्यास के पात्रों के, तब के बनाये गये चित्र भी देखे। इन्हें देखकर कुरुपता और विरूपता का एहसास हुआ और साथ-ही-साथ यह भी एहसास हुआ कि दास्तोवस्की स्वयं इनको चित्रित करने के लिए कितना कुछ नहीं, इनके साथ मिल-मिलाकर वैसा ही भोगते रहे होंगे। शायद कोई दूसरा यह काम नहीं कर सकता था, अगर दास्तोवस्की न होते, तो ऐसे उपन्यासों के लिखे जाने की सम्भावना कम ही होती और अगर होती भी, तो उनके बहुत बाद होती। यहाँ एक सम्मति-पुस्तिका रखी हुई थी। इसमें आये-गये लोग अपनी प्रतिक्रिया अंकित कर जाते थे। मैंने भी इसमें हिन्दी में ही यह नोट किया-‘मानव-मन की गहराइयों में उतरनेवाले इस महान् उपन्यासकार के इस म्यूजियम को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।’ मुझे विश्वास है कि मेरे न रहने पर भी मेरे ये शब्द कालान्तर तक वहाँ उस देश के हृदयपृष्ठ पर अंकित रहेंगे।

इसके बाद सोवियत संघ के लेखक-संघ की लेनिनग्राद शाखा में गया। वहाँ उस शाखा के मन्त्री जी० होलोपोव, कवि वी० तोरोपीजिन से भेंट और वार्ता हुई। मन्त्री महोदय ने बताया कि सोवियत संघ में यह शाखा द्वितीय है। साहित्य की सभी विधाओं के लेखक, कवि और नाटककार इसके सदस्य हैं। इसका प्रत्येक लेखक कोई विषय चुने या लिखे, वह स्वतन्त्र है। किसी पर कोई दबाव या जोर-जबर नहीं है। संघ का कर्त्तव्य है कि वह लेखकों को एकताबद्ध करे। मन्त्री महोदय को छूट है कि वह जीवन के प्रमुख विषयों पर लिखने के लिए लेखकों को अपना सुझाव दे सकते हैं, पर वे उन्हें कोई आदेश नहीं दे सकते। इस शाखा के कई भाग हैं, कवियों, उपन्यासकारों व नाटककारों इत्यादि से सम्बन्धित। यहाँ लेखक आते हैं। अपनी समस्याओं पर विचार-विनिमय करते हैं। कोई भी लेखक अपनी कृति को ले जाकर शाखा के अपने विभाग के

लेखकों से उसपर विचार-विनिमय कर सकता है। वहाँ के लोग उन कृतियों की आलोचना-प्रत्यालोचना भी करते हैं, कभी-कभी कोई-कोई लेखक इससे बुरा भी मान जाता है। हाँ, एक बात और मन्त्री महोदय ने बताया कि छपने से पहले किसी भी उपन्यास को वहाँ के चार सम्पादक देखते हैं और तब वह छपने को भेजा जाता है। नयी कविताएँ और नये उपन्यास पहले मासिक पत्रिकाओं में छपते हैं और फिर पुस्तक रूप में, लेखकों को पहले ही कुछ धन मिल जाता है, संकट की घड़ियों में शाखा लेखकों को आर्थिक सहायता भी देती है, दवा-दारू की व्यवस्था भी करती है। सैनीटोरियम भेजने में मदद करती है। जरूरत पड़ने पर अर्थहीन लेखक को मासिक वेतन भी देती है और यह भी व्यवस्था करती है कि वह देश को देखें और देखकर लिखें। शाखा देश के दूसरे स्थानों के लेखकों से मिलने-मिलाने के अवसर भी प्रदान करती है और सम्पर्क-सूत्र भी स्थापित करती है। इसमें लेखकों का क्लब भी है, इस शाखा में लेखकों को कमरे भी दिये जाते हैं कि वे वहाँ बैठकर अपना लेखन-कार्य कर सकें। उनके खाने इत्यादि का प्रबन्ध भी होता है।

इसके बाद कवि महोदय ने हमें बताया कि जब घर में लिखना सम्भव नहीं होता तब वे यहाँ आकर लिखने का कार्य करते हैं। इन्होंने मन्त्री महोदय की बातों का समर्थन किया और बताया कि 'आरोरा' (Aurora) नामक मासिक पत्रिका भी निकाली जाती है। उनकी रचनाएँ भी छपी जाती हैं। प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ भी छपती हैं। नये रचनाकार अपनी रचनाएँ दूसरी पत्रिका में भी छपा सकते हैं, कोई रोक-टोक नहीं है। यह पत्रिका नये रचनाकारों की मदद करती है। यहाँ से एक वार्षिक पुस्तक भी प्रकाशित होती है, जिसका नाम 'यंग लेनिनग्राद' होता है। पेशेवर लेखकों को भी यहाँ पर सुविधाएँ उपलब्ध हैं। किसानों, मजदूरों, कॉलेजों, नगरों और गाँवों के नये-पुराने सभी लेखकों को यह अपनी सहायता दिया करती है। इस संघ को यह श्रेय प्राप्त है कि यह कई प्रतिभाशाली नये लेखकों को सामने ला सका है—वे विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हैं और बौद्धिक व्यक्तित्व रखते हैं। कवि महोदय ने साहित्य के विषय में बताया कि वह एक तो नागरिकता-प्रधान होता है और दूसरे काव्यमय होता है, जिसमें परम्परा को अपनाया जाकर अच्छी कविताएँ लिखी जाती हैं। उनकी शाखा की सबसे कम उम्र की महिला कवयित्री अलेक्सीव हैं। पाठक उनकी कविताओं को बड़ी रुचि से पढ़ते हैं और उनका बड़ा मान-सम्मान है।

18 / बस्ती खिले गुलाबों की

इस महानगर लेनिनग्राद को देखकर मैंने लिखा :-

देखा

लेनिनग्राद,
अदेखा सूरज देखा,
सहस्रार से
खिले नगर का
अचरज देखा।

देखा

मानववाद,
अदेखा उत्सव देखा,
जनता से
प्रतिबद्ध काव्य का
सौष्ठव देखा।

मास्को राजनीतिक चेतना का महानगर है। लेनिनग्राद सांस्कृतिक चेतना का कलात्मक महानगर है, दोनों अपने-अपने ढंग के महत्वपूर्ण महानगर हैं।

फिर रात को होटल आया और वहाँ से इरीवान (Yere Van) जाने के लिए अर्धरात्रि के बाद लेनिनग्राद से हवाई-अड्डे पर पहुँचा। बड़ा सुन्दर हवाई-अड्डा है। रात को ही हवाई जहाज से उड़े। दूसरे दिन सबेरे छः बजे के लगभग इरीवान के हवाई-अड्डे पर उतरे। वहाँ से ANI होटल गये। वहाँ के फ्लैट नं० 7 के कमरा नं० 618 में मैं और श्री हरिदत्त शर्मा एक साथ ठहरे। इस होटल का नामकरण वहाँ के प्रसिद्ध साहित्यकार सदरुद्दीन ऐनी के नाम पर हुआ जान पड़ता है।

दोपहर को मारटिरास सारियान (Martiros Sarian) म्यूजियम देखने गया। यह इसी नाम से प्रसिद्ध चित्रकार की यादगार में बनाया गया, इन्हीं के चित्रों का संग्रहालय है। चित्रों को देखता रहा। चित्रों में व्यक्त चित्रकार के दिल और दिमाग से निकले रंग-रूप में अंकित वहाँ के परिवेश और इसमें जीनेवाले आदमियों को अपने इन्द्रियबोध से पकड़ता रहा। मैं तन्मय और तल्लीन रहा। कलाकार अदृश्य से जैसे बोलता रहा और मैं उसे सुनता रहा। मुझे चित्रों की भावभंगिमायें समझ में आने लगीं। उनका मौन भी सार्थक

वाणी बन गया। मैं उस वाणी से विभोर होता रहा। अपने से विसुध मैं उन्हीं में खोया रहा। रंगों का सूक्ष्म तरल प्रवाह प्रकृति के देह की चित्रमयता निरूपित करने में पूर्णतया सक्षम हुआ था। मानव-शरीर की आकृतियों से पौरुष और कर्मठता साकार हुई थी। जहाँ कला अमूर्तन का आभास देती थी, वहाँ भी वह कलाकार के अन्तर्मन के गहरे मानवीय बोध को ही व्यक्त करती थी। मैंने उन चित्रों में न आदमी खोया हुआ पाया, न उसका भीतरी और बाहरी परिवेश। कला सफल हो गयी थी, आदमी की सेवा में लगकर। उदास आदमी भी आदमी लगा-वह न झील में डूबा कुरूप बादल का टुकड़ा लगा, न कील से लटकता टँगा, चीकट मैला-कुचैला कपड़ा। उदास प्रकृति भी प्रकृति लगी-वह मरे हुए कुत्ते की लाश नहीं लगी। आज की अमूर्त कला से भिन्न इस चित्रकार की अमूर्त कला थी। आज तो अमूर्त कला विसंगतियों को उरेहती है और जो नहीं है-जो नहीं हो सकता-उसको रूपायित करती है, इसीलिए किसी की समझ में नहीं आती। कोई भी कला जब मानवीय सम्पर्क से वंचित हो जाती है, अन्यथा उसके परिवेश से पलायन कर जाती है और तान्त्रिकों की अथवा अघोरियों की वृत्तियों का विदूषण पा लेती है, तो वह कला नहीं रह जाती, वास्तव में अनाप-सनाप हो जाती है। मैं इस प्रसिद्ध कलाकार की सराहना करता रहा और उसकी मानवीयता से अभिभूत होता रहा। इनका जन्म 28-2-1880 में हुआ था।

यह म्यूजियम तिर्मजिला है। इसमें सारियान की 150 तस्वीरें और ग्राफिक्स हमेशा देखी जा सकती हैं। पेरिस में सन् '37 में उनकी चित्रों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई थी। वह आरमीनिया की विज्ञान अकादमी के सम्माननीय सदस्य सन् 1956 से रहे। सन् 1960 में उन्हें सोवियत संघ का जन-कलाकार होने का पुरस्कार मिला।

म्यूजियम से लौटकर होटल आया। लंच लिया, उसके बाद इरीवान से बस द्वारा हम लोग 70 किलोमीटर का रास्ता तय करके वहाँ पहुँचे, जहाँ सेवान झील थी। इसे सागर भी कहा जाता है। यह विशाल है। इसके एक तरफ रेलवे स्टेशन है। स्टेशन कुछ ऊँचाई पर है। वहाँ के लोगों ने हमलोगों को अपने स्नेह से भाव-विभोर किया। पानी बरसा, बादलों की फुहार को हमलोगों ने अपने ऊपर लिया। उन्हीं लोगों ने हमें स्वादिष्ट भोजन खिलाया। पेय भी पिलाया। उनके आतिथ्य-सत्कार की याद आज भी ताजा है। झील के दूसरी तरफ ऊँची पहाड़ी का सिलसिला चला गया है। जल में उठती लहरियाँ अनन्त काल की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म संवेद्य चेतना का नाद-नृत्य कर रही थीं। मैं काल के अन्तर्मन में डूबा अपनी धरती का सौन्दर्य निहार रहा था। आकाश के आक्रोश में भी वह धीरज नहीं छोड़ती और अपने कर्मठ पुत्रों को आश्रय और अवलम्ब दिये रहती है। मैं

20 / बस्ती खिले गुलाबों की

खड़ा तो तट पर रहा बड़ी देर तक, परन्तु खड़े-खड़े में ही जल के वल्कल वसन पहनकर नाच-नाच उठता रहा। देर हो रही थी। फिर हम लोग वापस चल दिये। मैंने दिन को बिदा दी। उसने हमें बिदा दी। हम फिर उसी रास्ते से अपने होटल आये। रात होटल में बितायी। मैं उस झील के सपने देखता रहा। उसकी मछलियों की कहानी सुनता रहा।

दूसरे दिन 16/5 को सुबह होटल से बाहर निकल आस-पास की सड़कों में टहला-घूमा। दुकानें देखता रहा। दूकानों में भरा माल-मत्ता देखता रहा। आते-जाते लोगों की चाल-चलन देखता रहा। जिसे देखता, उसी के मन में बैठने का प्रयास करता और कुछ-न-कुछ गुपचुप जान लेने का उपक्रम करता। मैं भाषा की सामर्थ्य छोड़कर, भाषा से परे पहुँचकर, केवल भाव-भंगिमाओं से हाव-भाव से, नाक-नकशे से, गति-गमन और शरीर-सन्तुलन से उस नगर के निवासियों की चित्तवृत्तियों को जानता-पहचानता रहा और यह निष्कर्ष निकाल सका कि यहाँ के लोग-बाग तन और मन से खुशहाल हैं और दीन-हीन मनोदशाओं के शिकार नहीं हैं। उन लोगों को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई और मैं आश्चर्य हुआ कि मनुष्य यहाँ भी अपनी गरिमा तो पा रहा है।

साढ़े दस बजे दिन में इरीवान-स्थित बच्चों की चित्र-गैलरी देखने गया। चार साल पहले गैलरी में प्रदर्शनी दिखाने का काम शुरू हुआ था। तब से अबतक साठ प्रदर्शनियों का आयोजन हो चुका है। इस प्रदर्शनी में जिसे हम देखने गये थे, केवल एक स्कूल के बच्चों के बनाये हुए चित्र दिखाये गये थे। अब यह प्रदर्शनी बराबर हुआ करेगी। विदेश के स्कूलों के बच्चों के चित्र भी यहाँ मँगाये जायेंगे और दिखाये जायेंगे। यहाँ से भी रूसी बच्चों के बनाये चित्र प्रदर्शन हेतु विदेश भेजे जायेंगे, वहाँ वे बच्चों के चित्रों की प्रदर्शनियों में दिखाये जायेंगे। इस एक ठोस प्रयास से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि सोवियत भूमि में बच्चों की कलात्मक प्रतिभा को बड़े उत्साह और लगन के साथ विकसित किया जा रहा है। सोवियत सरकार समाजवादी चेतना के अंकुरों को अपनी ममता से इस काबिल बना रही है कि वे भविष्य के सिरमौर बनें और उनकी कला से मानव-समाज का कल्याण हो। अन्य देशों में बच्चों की कलात्मक अभिरुचि के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, तभी तो विरले ही प्रसिद्ध होने का अवसर पाते हैं। साधारणतया तो वहाँ कला का भी पूर्णरूपेण शोषण किया जाता है और बचपन में ही प्रतिभाओं को कुण्ठित कर दिया जाता है।

मैंने एक चित्र में एक पेड़ बना देखा। पेड़ में एक लाल फल देखा। उस एक फल को ही तोड़ रहा था एक आदमी, जो घोड़े पर सवार था और घोड़ा था कि जमीन से उठा

उड़ा जा रहा था। मैं इस चित्र को देखकर स्तम्भित रह गया। उस चित्र का अर्थ लगाने लगा। उससे बालक-चित्रकार की चेतना के अन्दर पैठने लगा। निश्चय ही बच्चा अपने परिवेश से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। दृश्य में घोड़ा है। वह पूरी ताकत से जमीन से उठा उछाल की स्थिति में है। बालक ने इस स्थिति में कभी-न-कभी घोड़े को देखा ही होगा। तभी तो वह इस चित्र में आ गया। घोड़ा है तो घुड़सवार होना ही चाहिए, जो घोड़े को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करे। चुनान्चे घोड़े पर सवार है एक सवार। प्रकृति उदार होती है। पर अपने फल सहज ही नहीं देती। आदमी को कठिन प्रयास करना पड़ता है कि वह फल पा सके। पेड़ ऊँचा है। आदमी उसपर चढ़ सकता था। परन्तु नहीं, उस बालक चित्रकार ने आदमी को पेड़ पर नहीं चढ़ाया, क्योंकि उसे सविशेष प्रयास करने का एक जीवन्त चित्र खींचना था और ऐसे ही प्रयास का चित्रण उसने घोड़े पर सवार को चढ़ाकर और घोड़े को उछालकर फल की ओर गया दिखाकर किया। इस कलात्मक बिम्बविधान से एक साधारण से दृश्य में जान पड़ गयी और देखनेवाला मुग्ध हुए बिना न रह सका।

समाजवादी चेतना का यह प्रारम्भिक प्रदर्शन मात्र था। ऐसी चेतना ही तो आगे चलकर बड़े-बड़े असम्भव कार्यों को सम्भव करती है और साहसिक इतनी होती है कि ज्ञान की खोज में अन्तरिक्ष में सदेह प्रवेश करती है और संसार को चकित कर देती है।

एक चित्र में हाथी दिखाया गया। बच्चों को हाथी विशेष प्यारा है। हाथी देखने में सबसे बड़ा होता है और अपनी स्थूलकाया से सूँड़ लटकाये हुए चलते-चलते में सब कुछ लपेट लेने की मुद्रा में अजूबा भी लगता है। धूल उड़ाता है, तो अपने और दूसरों को धूल-धूसरित कर देता है। जब सूँड़ में पानी भर-भरकर फुहारें मारता है, तो रिमझिम बरसात कर देता है। जब बड़े-से-बड़े बोज़ को पीठ पर लादकर चलता है, तो आँखें देखती ही रह जाती हैं। तब वह पहाड़ ही लगता है। शायद इसी सबको व्यक्त करने के लिए बालक चित्रकार ने हाथी का चित्रांकन किया था। घोड़े कई चित्रों में दिखे। स्वाभाविक है ऐसा अश्व-प्रदर्शन। घोड़े तो सहज में ही दुनिया में हर जगह दिख जाते हैं। फिर सरकस में हाथी और घोड़े तो अपना-अपना कमाल दिखाते ही रहते हैं और बच्चों को सरकस देखना भी बहुत अच्छा लगता है। सम्भवतः इसीलिए तो बालकों को समाजवादी चेतना में पशुओं को बिम्बित होने का प्रश्रय मिला।

एक दूसरा चित्र, देखते ही अपनी क्रूरता से क्षुब्ध कर देता था। एक घोड़ा था। घोड़े की दुम के बालों से आदमी के सिर के बाल बँधे थे। घोड़ा गति की मुद्रा में था। आदमी जमीन में घिसट रहा था। बालक तो स्वभावतः कोमल और दयालु होते हैं। ऐसी

निर्दयता उनमें नहीं होती। फिर भी उस बालक चित्रकार में ऐसी प्रवृत्ति के दर्शन हुए। ऐसा क्यों हुआ? मैं सोचता रहा। समाजवादी देश में तो बालकों के प्रति आदमी भी बहुत स्नेह दिखाते हैं और उन्हें अपनी ममता भरपूर देते हैं, तो फिर क्यों ऐसा हुआ कि बालक अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में आदमी के प्रति एकदम अनुदार और बर्बर हो गया? बालक के लिए घोड़ा आदमी से अधिक महत्त्व का हो गया, क्यों? शायद बालक आदमी को, उसके किसी जघन्य अपराध के लिए दण्डित कर रहा है। यह समाजवादी समाज के बालक का नैसर्गिक दण्ड-विधान मालूम पड़ता है। हो सकता है कि बालक ने यह सोचा हो कि उसके देश में आदमी के प्रति वही ऐसा क्रूर बर्ताव कर सकता है, जो व्यक्ति मदान्ध होकर अपनी आदमियत खोकर पाशविक वृत्ति का हो गया हो।

एक दूसरे चित्र में दूल्हा-दुलहिन का चित्रांकन किया गया था। दूल्हा श्वेत शरीर का काला कपड़ा पहने था। दुलहिन लाल ओठों वाली हरे वस्त्र पहने थी। आकर्षक रंग-योजना थी। एक अन्य चित्र में शेर और जेबरा भी देखने को मिले। नदी, नाव, मछली, जाल, तालाब इत्यादि भी बच्चों को प्रिय लगे थे। उन्होंने इनका भी चित्रांकन किया था। एक काला चीता बनाया गया था। उसकी आँखें, उसका मुँह, उसके दाँत विशेष आकर्षक बनाये गये थे। वैसे चीता काला नहीं होता। परन्तु, उसे काला बनाकर उसकी आँखों, उसके दाँतों और मुँह को उभारा गया था। उस पशु की बर्बरता साकार हो गयी थी।

एक ऐसा भी चित्र था, जिसमें सिर तो स्त्री का और शेष शरीर पक्षी का था। शायद बच्चे के मन में यह आया रहा हो कि चिड़िया भी रहे और स्त्री भी रहे। तो स्त्री के एवज में उसका सिर आ गया। बच्चे माँ-बहन की मुखकृति से ही तो अधिक प्रभावित होते हैं। चिड़िया का उड़ना बच्चों को बहुत भाता है। इसलिए माँ हो या बहन वह शेष अंगों से चिड़िया बना दी गयी कि उसके ऐसे चित्र से उसकी भावनार्थ दोनों के प्रति व्यक्त हो सकें। न वह माँ-बहन को छोड़ सकता है, न पक्षी को। सिर छोटा और आँखें छोटी और मुँह भी छोटा ही होता है। वह बोलता भी है तो समझ में नहीं आता। माँ-बहन का बोलना प्यार की अभिव्यक्ति करता है। फिर आज के युग में अन्तरिक्षयान की यात्रायें हो रही हैं। बालक मन में ऐसे यान का आकार अभी बन नहीं पाया, इसलिए उसने यान के बजाय स्त्री को पक्षी बनाकर उसे अन्तरिक्ष की उड़ान करा दी।

एक गाड़ी में लाल रंग का घोड़ा जुता है। गाड़ी में बैठा है एक लड़का, जो गिटार बजा रहा है। गिटार को खड़ा किये है, सभाले है एक कुत्ता। यह सब साधारणतया नहीं होता। बाल मन ने ऐसा चित्रांकन करके अपनी मनोभावना को प्रकट कर दिया है। बच्चे

को कुत्ता प्रिय है। उसे संगीत प्रिय है। उसे घोड़ागाड़ी प्रिय है। कुत्ता उसका प्यारा साथी है। इसलिए वह गिटार बजाता है। दोनों आनन्द लूटते हैं और उसका साथी कुत्ता उसके संगीत-समारोह में उसकी सहायता करता है। समाजवादी समाज का बालक संगीत को अपने पूरे परिवेश से जोड़ता है और दूसरों के लिए भी प्रभावशाली बनाता है।

एक बालक ने अपने चित्र में उल्लू बनाया था। साधारणतया आस-पास उल्लू कम दिखाई देते हैं। फिर भी इस बालक चित्रकार ने उसे कहीं-न-कहीं देखा ही होगा, तभी तो वह उसे चित्रांकित कर सका। मैं इस चित्र-प्रदर्शनी को देखकर अपने देश के बच्चों के बारे में सोचता रहा। काश, उनकी रचनात्मक प्रतिभा को ऐसे ही विकसति करने के साधन उपलब्ध होते, तो वह अपने परिवेश और देश से जुड़ सकते और उनकी भावनायें संस्कारित हो सकतीं। ऐसा नहीं हो पा रहा अपने देश में। तभी तो हमारे देश के बच्चे उच्छृंखल और उदण्ड होते जा रहे हैं। केवल स्कूल में जाकर ही वह कभी भी अब सुधर नहीं सकते। उनको ज्ञान तो किताबों से मिल सकता है, परन्तु पुस्तकें उनकी चित्तवृत्तियों को दृष्टि और दिशा देकर माता-पिता के गुणों से सम्पृक्त नहीं कर सकतीं। आवश्यकता है इस ओर तुरन्त ध्यान देने की।

बारह बजे दिन 'आरमीनियन' चर्च देखने गये। बहुत बड़ा कम्पाउण्ड था। उसमें साफ-सुथरा और सुरक्षित गिरजाघर था। एक बजे दिन तक देखते रहे। यह गिरजाघर कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट गिरजाघरों से भिन्न था। इस चर्च में वे सब उपहार-जो विभिन्न देशों के इसके मतावलम्बियों से बरसों पहले इसे मिले थे, संगृहीत देखे। अठारहवीं सदी में मद्रास से इसे दो कपड़े के चित्र (दीवाल में टाँगे के) मिले थे। उन्हें देखकर ऐसा लगा कि जैसे हम मद्रास पहुँच गये हों। दोनों नगरों के बीच की दूरी समाप्त हो गयी थी।

सवा एक बजे दिन उस स्थल को देखने गये, जहाँ खुदाई करके भू-गर्भ से एक गिरजाघर का अवशेष निकाला गया था। यह ज्वार्थ नोटज़ (zvarth notz) नामक कथीड्रल था। इसके 3 खण्ड थे। गोलाकार इमारत की शकल में था। इसका फन की शकल का गुम्बद था। इसकी खुदाई सन् 1905 में शुरू हुई थी। सन् 1937 में इसका म्यूजियम स्थापित किया गया। यहाँ मुझे अपने देश की बनी मिट्टी की बड़ी डहरी-जैसी एक डहरी भी देखने को मिली। अन्य बरतन भी देखे, जो मिट्टी के ही बने थे। लोहे की चाभियाँ और ताले भी देखे। बिल्कुल अपने यहाँ के जैसे, वैसे ही बड़े-बड़े भारी और मजबूत जैसे हमारे देश में पहले बना करते थे। पत्थर की बनी जमीन पर अंकित सूर्य घड़ी देखी। इसमें गिनती के बजाय आरमीनियन भाषा के अक्षर अंकित थे।

24 / बस्ती खिले गुलाबों की

इसमें बीच में एक छेद था। मेरे गाँव के मदरसे में सन् '21 में जैसे खपड़े छाये रहते थे, वैसे ही खपड़े यहाँ खुदाई में मिले देखे। पुरानी कारीगरी भी देखने को मिली। पत्थर पर खुदी हुई अंगूरलतायें देखीं। अलंकरण का शिल्प मन मोह रहा था। एक बड़ा गड्ढा भी देखा। बताया गया कि इसमें अंगूर से निकाला गया रस संचित किया जाता था और भी अवशेष देखे। रहने के घरों में पत्थरों के बीच में मिट्टी (पकाई हुई) की पाइपलाइन ले जायी गयी थी। इन पाइपलाइनों से पानी बहकर आता था, इसके अलावा वहाँ पानी गरम करने के पहले के स्थल देखे। तब के जमाने में आरमीनिया का प्रतीक ईगल था। वह भी एक पत्थर पर खोदकर तब बनाया गया था। अब तक सुरक्षित है।

एक कुआँ भी देखा। वह 50 मीटर की गहराई का था। तब भी इतना ही गहरा था। उसीसे उस गहराई से तब पानी निकाला जाता था।

लगभग दो बजे दिन को हम लोग बराक्का का स्टेटफार्म देखने गये। वहाँ 300 हेक्टर भूमि पर अंगूर की खेती की जाती है। 100 हेक्टर भूमि पर अन्य फलों की खेती होती है। यहाँ चार सौ आदमी रहते हैं, जो किसी-न-किसी रूप में इस फार्म से सम्बद्ध हैं। कुछ के अपने घर हैं। कुछ फार्म के घरों में रहते हैं। यह फार्म छोटे बच्चों की देख-रेख का पूरा प्रबन्ध करता है। यहाँ उनके लिए किंडरगार्डन स्कूल स्थापित है। उसे देखा, बहुत-बहुत तरह के खिलौने थे। बच्चों के सोने के लिए व्यवस्थित और सुन्दर प्रबन्ध था। पालनों में स्वच्छ सफेद गद्दे और तकिये लगे थे। औरतें उन बच्चों की देख-रेख कर रही थीं। यह पक्की इमारत थी, दो खण्ड की। हर कमरा सुसज्जित था।

अंगूर का खेत देखने गये। अभी पौधे बड़े न हुए थे। अगस्त में फल आना शुरू होगा। जाड़े में इन पेड़ों को मिट्टी से ढँककर दबा दिया जाता है, ताकि बरफ इन्हें मार न डाले।

शाम 7.30 बजे एक 'बैले' देखने गये। यह एक पुराने संगीतज्ञ (कम्पोजर) के जीवन पर आधारित नाट्य प्रदर्शन था। बताया गया कि उस संगीतज्ञ ने जब अपने देश का करुण इतिहास पढ़ा, तो वह असन्तुलित मस्तिष्क का हो गया। तुर्कों ने आरमीनिया पर हमला किया और उसे ध्वस्त किया था। उस ध्वंस का इतिहास वेदनामय था। वेदना की तीव्र अनुभूति ने आरमीनिया के उस संगीतज्ञ को पागल बना दिया। इसी मार्मिक घटना को लेकर संगीत-नृत्य-नाटिका लिखी गयी थी। उसी नाटिका का प्रदर्शन था। इसमें

जनता से एक होकर अपने देश का पुनरुद्धार करने की ललकार और पुकार का अभिव्यंजन हुआ था। हमलोग देखते रहे। संगीत से प्रभावित होते रहे। हमारे हृदय द्रवीभूत हुए। इसके द्वारा, जो सामूहिक नर-संहार हुआ था, वह साकार हो गया था। जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड जब हमें अत्यधिक मर्माहत कर सका, तो यह तो उससे भी बड़ी दारुण और हृदयविदारक घटना थी। हमसब तब इससे क्यों न प्रभावित होते।

‘बैले’ का स्वराज्य निराशाजनक न होकर मानवीय गुणों का पोषक एवं उत्साहजनक और आशाप्रद था। फिर जनता देश का निर्माण करती हुई दिखायी गयी थी। यह सब मंच पर सामूहिक रूप से दिखाया जा रहा था। इसे राष्ट्रीय बैले की संज्ञा दी गयी है। हम अपने देश में अभी भी इस तरह के प्रदर्शन करने की ओर सक्रिय नहीं हुए। हमारे देश की नाट्य और नृत्य-प्रतिभा अभी भी मन बहलाने के लिए ही प्रयुक्त होती है। भविष्य में यदि ऐसा न किया गया, तो हमारा रंगमंच जन-जीवन से कटकर कुछ दिनों में नष्टप्राय हो जायेगा।

रात होटल में रहे।

दूसरे दिन सुबह दस बजे हमने होटल छोड़ा। एक प्रसिद्ध म्यूजियम देखने गये। वह इस दिन बन्द था। हम उसे न देख सके। वहाँ से लौटकर हम लोग शहीदों का स्मारक देखने गये। कंकरीट का बना था। विशाल आकार का था। वहाँ पर एक ऊँचा होता चला गया, नोकीला होता गया, स्पाइरल की शकल को साकार किया गया था। देखकर हैरत होती थी। ज्यादा देर तक देखना दूभर था। गरदन पिराने लगती थी। उस कंकरीट के बने स्मारक से लगातार आग की एक लाल लपट निकला करती है। साथ-ही-साथ एक कोमल दर्दभरा संगीत-स्वर भी अनवरत रूप से बजता रहता है। यह स्वर नीचे के खण्ड से उठकर ऊपर आता है। मैंने भी शहीदों को अपनी और अपने देश-वासियों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की।

राजदान नदी के तट पर बसा यह इरीवान नगर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य में अनूठा है। यह अरारात घाटी के उत्तर-पूर्व में स्थिति है। कई बार पदाक्रान्त हो-होकर बार-बार जी उठा और जन-जीवन का प्रिय केन्द्र बन चुका है यह नगर। इसी से इसकी शोभा और भी अनूठी है। इसके चारों तरफ के खड़े दमदार पहाड़ बरफ से ढँके हुए हैं। इसकी नदियाँ भी वही संघर्ष भोगकर प्रवाहित होते-होते अब इसके रूप के अनुरूप ही इसका गुणगान करती रहती हैं। यहाँ के लोग बड़े रंगीन मिजाज के दिखे ऊपर से और भीतर

26 / बस्ती खिले गुलाबों की

से, सौन्दर्य का वरण तो कर ही लिया है यहाँ की कामिनियों ने, प्रकृति भी उनके सौन्दर्य से सुखदा, फलदा और प्रमदा हो गयी है।

मैंने इस मनहर नगर पर भी एक कविता लिखी। वह इस प्रकार है—

चुम्बकीय

आकर्षण का यह नगर

मनोभव की माया से

क्षण—क्षण नूतन,

हृदय—हृदय को

मोह मोह कर,

दिक दिगन्त को वशीभूत कर,

जरा—मरण को जीत चुका है।

इसे जीत कर,

मुग्ध—मगन—मन

नाच रही है मेरी कविता,

परा और अपरा मुद्रायें

साज रही है मेरी कविता।

रात होटल में बितायी।

17/5 को मैंने टेलीविजन वालों को अपने विचार रेकार्ड कराये।

फिर सदियन की पेण्टिंग देखने गया।

फिर माथेण्डारान (म्यूजियम फॉर आल) म्यूजियम देखा। प्रभावित हुआ। तमाम लोग देख रहे थे।

शहीदों का म्यूजियम भी देखा।

फिर बारह बजकर पचपन मिनट पर दोपहर के समय इरीवान से हवाई जहाज पर चढ़कर उड़े। हम लोग दोशाम्बे 6 बजे शाम पहुँचे। दोशाँबे नाम के शानदार होटल में ठहरे। सोने के पहले इधर—उधर सड़कों पर चहलकदमी की। देखते—सुनते रहे। गुलाब—

ही-गुलाब, बड़े-बड़े गुलाब, जहाँ देखो वहाँ खिले थे। होटल के कम्पाउण्ड में, होटल से बाहर, वसन्त-श्री शृंगार किये मन मोह रही थी। इस नगर में भी जादू-जैसा प्रभाव पड़ा।

अठारह मई को होटल से हमलोग सामूहिक फार्म (कोलखोज) देखने गये। इसका नाम था 'कलेक्टिव फॉर्म सेकण्ड पार्टी कान्फ्रेन्स' यहाँ तेईस किलोमीटर लम्बी पानी की नहर थी। इसमें कुल मिलाकर तीन हजार व्यक्ति काम किया करते हैं।

एक स्कूल भी इसी के अन्तर्गत है। उसे भी देखा। स्कूल में अमीर खुसरो, जेबुन्सिा, हाफिज और सादी के चित्र देखने को मिले। दीवारों पर टँगे थे। द्वितीय महायुद्ध के वीरों के चित्र भी लगे हुए थे।

यहाँ हमने खाना खाया। नान की बड़ी रोटी खाने को मिली। बड़ी मुलायम थी। कई दिनों के बाद भारत छूटने पर अब रोटी के दर्शन हुए थे। जी खुश हो गया। चाय पीने को मिली। साथ में किशमिश भी दी गयी। मैंने खूब खायी। बादाम के शकल की एक नमकीन भी सामने आयी। वहाँ से लगभग ढाई बजे दोपहर हमलोग वापस आये।

तीन बजने पर हमलोग फिर घूमने-फिरने गये।

एक बड़ा सुन्दर म्यूजियम है। यहाँ अक्टूबर-क्रान्ति के पहले की हालत का दृश्य दिखाया गया। फिर उस क्रान्ति के बाद की स्थिति दिखायी गयी। पहले वहाँ की स्थिति दयनीय थी। न सड़कें थीं। खेती-पाती की दुर्दशा थी। बिजली भी अप्राप्य थी। बाद की स्थिति खुशहाली की तस्वीर प्रस्तुत करती है। सब तरह के सुधार किये गये हैं। शोषण समाप्त हो गया है। शिक्षा-केन्द्र स्थापित हो गये हैं। खेती में आमूल परिवर्तन किया गया है। जनता के स्वास्थ्य की फिकर की व्यवस्था की गयी है। बेकारी समूल नष्ट कर दी गयी है। बिजली का प्रकाश दूर-दूर तक पहुँचाया जा चुका है। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था अमल में लायी गयी है। इस क्रान्ति के बाद ही तो ताजिकिस्तान की यह रिपब्लिक बनी है। वहाँ के वीरों के चित्र देखने को मिले।

यहीं एक किताब की दुकान में गये। वहाँ संस्कृत के एक बड़े महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' का रूसी भाषा में अनुवाद देखने में आया। इस ग्रन्थ के प्रणेता अभिनवगुप्त थे। यह काव्य से सम्बन्धित पुस्तक है। इसे देखकर मालूम हुआ कि हमारे देश के साहित्य में रूसियों की गहरी रुचि है और वे लोग हमारे साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन

कर रहे हैं। कभी यह सोचा भी न होगा किसी ने कि यह ग्रन्थ रूसी भाषा में अनूदित भी होगा। इसका अनुवाद बड़े परिश्रम से करना पड़ा है।

फिर वहाँ से निकलकर एक चायखाना में चाय पी। यह चायखाना जनसाधारण के लिए बने हैं। तखत पड़े हैं। कुर्सियाँ लगी हैं। तखत पर साफ-सुथरा बिछावन बिछा है। लोग आते हैं। बैठते हैं। चाय पीते हैं। नाश्ता करते हैं। दाम देते हैं। फिर चले जाते हैं। मुझे यहाँ बैठे-बैठे अपने यहाँ की सड़क के किनारे की छोटी-छोटी दुकानें याद हो आयीं। उसी माहौल में हमने यहाँ चाय पी और वह नान रोटी बड़े स्वाद से खायी।

एक कृत्रिम झील बनायी गयी है। वहाँ गये, उसे देखा, सुन्दर थी। उसमें नाव खेने की प्रतियोगिता चल रही थी। खूब खिले हुए गुलाब देखे। करीब साढ़े सात बजे शाम होटल वापस आये। अब भी सूरज आसमान में था। शाम हमारे यहाँ की जैसी नदारद थी। धूप चमक रही थी। अजीब-सा लगा था।

उन्नीस मई को दोशाम्बे में स्थित ताजिकिस्तान का ऐतिहासिक म्यूजियम देखने गये। दस बजे से लेकर ग्यारह बजे दिन तक देखते रहे। पसन्द आया।

सवा ग्यारह बजे यहीं एक फिल्म देखी। ताजिकिस्तान के ऊपर थी। इसमें ताजिकिस्तान के बरफीले पहाड़ देखे। उनके सौन्दर्य से प्रभावित हुए। भेड़ों के झुण्ड देखे। बैजनी रंग के फूलों की बहार देखी। सेब देखे, पेड़ों से लटके बड़े-बड़े। मुँह में पानी भर आया। औरतें-आदमी उन्हें तोड़-तोड़कर टोकरियों में रख रहे थे। शिक्षा-संस्था दिखायी गयी थी। लड़के-लड़कियाँ और शिक्षक थे। कई कमरे थे। प्रयोगशाला दिखायी गयी। अंगूर तोड़ना भी फिल्म में ही देखा। एक स्वास्थ्य-केन्द्र भी आँखों के सामने आया। बढिया था।

इसी फिल्म में नाच-गाना भी होता दिखाया गया। वहाँ की संस्कृति का प्रतिबिम्बन हुआ। यूरोपीय आधुनिकता से वह अब भी विनष्ट नहीं हुई।

औरतों को कुरता, इजार (पायजामा) और टोपी पहने देखकर कश्मीर याद आ गया।

इसी फिल्म में उत्तरी ताजिकिस्तान के फ्रेस्कोज भी दिखाये गये। बड़े ही रंगमय हैं।

नाचती हुई महिला को लँहगा लहराते देखा। अपने यहाँ की गाँव की औरतें याद आयीं। यह साम्य देखकर एकता महसूस की।

कसीदाकारी का संस्थान भी प्रदर्शित हुआ। मखमल पर काम किया जा रहा था सुनहरे तारों से। देखकर उन हाथों और आँखों की सराहना करना नहीं भूला, जो तुरत-फुरत सपाटे से जादू ऐसी कारीगरी कर देती थीं। मुग्ध होता रहा। अपने यहाँ ऐसा देखने का अवसर मुझे नहीं मिला था। मैंने तो अपने गाँव के दरजी को कपड़े की नाप लेने पर भी छोटा बनाते ही देखा।

एक बैले देखा। याद नहीं रहा कि उसमें क्या देखा? मैंने उस समय कुछ भी नोट नहीं किया था।

इससे उसका नाम तक भूल गया।

उन्नीस मई को ही केन्द्रीय फिरदौसी पुस्तकालय गये। बताया गया कि यहाँ बहुत किताबें हैं। संख्या शायद दो मिलियन बतायी गयी थी। यह तो याद है कि बहुत बड़ा पुस्तकालय है। इसमें एक अलग प्रकोष्ठ स्थापित किया गया है, जहाँ पूर्वोक्त देशों की प्राचीन पुस्तकों की मूल पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। यह सन् 1928 में स्थापित किया गया था। यहाँ ही मुझे सदरुद्दीन ऐनी के प्रसिद्ध उपन्यास 'दाखुन्दा' का हिन्दी-अनुवाद देखने को मिला। अनुवाद किया है राहुल सांकृत्यायन ने। पुस्तकालय औपचारिक तरीके से सन् 1933 में जनता के लिए खोल दिया गया था।

यहाँ फारसी-अरबी और ताजिक भाषा की अत्यन्त प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित देखने को मिलीं। यहाँ 2000 से अधिक दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रहालय है।

यहाँ की नवीं शताब्दी के तबरिस्तान का इतिहास लिपिबद्ध देखने को मिला। यह देश तब कैस्पियन सागर के तट पर बसा था।

फीरोजशाह तुगलक का इतिहास अलबरूनी का लिखा देखा।

फिरदौसी की कृति, 13वीं सदी की, 'शाहनामा' देखी। इसे तीस वर्ष में लिखा गया था। यह गजनवी को जब बेंचा गया था, तब एक प्याला चाय का दाम ही मिला था। यह पुस्तक मूल 'शाहनामा' की सोलहवीं शताब्दी की प्रतिलिपि है।

इस पुस्तकालय को देखने स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री जाकिर हुसैन आये थे। यहाँ के विजिटर बुक में उनके हस्ताक्षर हैं। अन्य आये कई भारतीयों की रायें और दस्तखत देखे। स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा के भी हस्ताक्षर देखे। कैफी आजमी, मजरूह सुल्तानपुरी, एहतेशाम हुसेन और डी० पी० धर भी यहाँ आये थे। उन्होंने भी अपनी राय लिखी थी और अपने दस्तखत बनाये थे।

अमीर खुसरो का दीवान देखा। 'खमसा' एक प्रकार की उनकी शायरी है।

फिर वहाँ से हमलोग मोटर द्वारा एक घाटी देखने गये। यह वहाँ से बहुत दूरी पर स्थित थी। सड़क खूब उम्दा और चौड़ी थी। मोटरें भी बढ़िया थीं। वे चलीं तो चलती चली गयीं और रुकीं तो वहीं पहुँचकर रुकीं। यह घाटी बड़ी रमणीक लगी। सैलानियों का मन-पसन्द भ्रमण स्थल यही घाटी है। तमाम लोग तमाम जगह देखे। वारजोब (Varzob) नदी के दोनों ओर लोग-बाग पूरे रास्ते भर खाना बनाते और मछली मारते दिखे। महिलायें भी संगसाथ में कहीं-कहीं दिखीं। बच्चे और जवान भी मजा मार रहे थे। कहीं कोई मछली पकड़ने के लिए बक़्थ्यान लगाये बैठा दिखा। यह नदी वेगवती है। इसका पानी साफ और निर्मल है। इसके दोनों ओर पहाड़ हैं। ऊँचे चले गये ये सुदृढ़ प्रहरी बर्फ की टोपी लगाये हैं। इनमें कहीं-कहीं ग्लैशियर भी दिखाई दिये। बादल तो हर क्षण, सिर पर इन पहाड़ों के चलते-फिरते नजर आते हैं। सड़क सीमेण्ट की है और वक्राकार चली गयी है, मोड़ लेती हुई। सभी सैलानियों को कामकाज से फुरसत थी। नदी का किनारा, किनारे पर लगे पेड़, वह भी छायादार और तब फिर कौन चूकता कि वहाँ न पहुँचता और पिकनिक न मनाता। मौसम सीने से लगा लेनेवाला था। मजा आ गया। इस घाटी में पहुँचकर मैं घाटी का हो गया।

हमलोग नदी के सीने पर आधी दूर तक चले गये। होटल के बड़े छज्जे पर या कहेँ बुर्ज पर दिन के 4 बजे भोजन किया। नीचे नदी के पानी की पायल बज रही थी। ऊपर हमारे साथी आरमीनिया के अंगूरों की बनी शराब ढाल रहे थे और मस्ती से गा-गुनगुना रहे थे। यहाँ गरमा-गरम भोजन मिला। फिर नानरोटी मिली। मक्खन, पनीर, खीरा, हरी धनियाँ, पालक, चुकन्दर सबकुछ खाने को मिला। यूरी ने रूसी भाषा में लिखी अपनी कविता हम लोगों की प्रशस्ति में सुनायी। मुझे भी अपनी एक कविता सुनानी पड़ी। गीत था, माँझी न बजाओ बंशी। गा तो न सका पर सुना गया। अंग्रेजी में अनुवाद भी करता गया। दुभाषिया रूसी में अनुवाद करता रहा। फिर आग्रह हुआ तो दूसरा गीत सुनाना पड़ा। वह था 'धीरे उठाओ मेरी पालकी।' दुभाषिया थे मिस्टर सुस्कोव। हमारे साथी पं० हरिदत्त शर्मा ने विशेष जोर डाला था, तब मैं सुना पाया था। वे भी आँखों से उमरखैयाम हो रहे थे। मैं भी पद्माकरी मनःस्थिति में था। खूब मजा आया।

7 बजे शाम हमलोग वापस होटल आये।

फिर हम चार जने एक ओपेरा देखने गये जो 7.30 बजे से शुरू हुआ था। समझ में तो आया नहीं। लेकिन बिना समझे भी आरकेस्ट्रा सुनने में मजा आता रहा। एक व्यक्ति

खड़ा होकर दोनों हाथ फैलाये वादक कलाकारों को इशारे से लय और ध्वनि का उतार-चढ़ाव बताता जाता था। उसके हाथ भी बड़ी सतर्कता से उठते-गिरते मन्द और क्षिप्र होते थे।

फिर होटल आये। सोये-साये।

बीस मई को दस बजे दिन होटल छोड़कर वक्ष घाटी (Vaksh Valley) आये। इस घाटी में बसा आधुनिक नगर नूरेक है, जो सन् 1962 में अपने इस नये रूप में अस्तित्व में आया। पहले तो यह एक छोटा गाँव ही था। इस नगर में मेयर सुकूरोफ बोइनरजाब हैं। यहाँ हाइड्रो इलैक्ट्रिक इन्स्टालेशन के उच्चतम अधिकारी हैं—मुखामीदेपेव वालीरीनि-जामोविच। इतना बड़ा नाम है कि उच्चारण करने में दिक्कत होती है और समय भी पर्याप्त लगता है। काम बड़ा है शायद इसीलिए नाम भी बड़ा है। हमारे यहाँ तो दो-दो अक्षरों के छोटे-छोटे नाम ज्यादातर हैं। इसलिए बोलने में आसानी होती है। यहाँ बारह बरस पहले नाम-मात्र को आबादी थी। लोग भेड़ें पालते और ऊन का व्यापार करते थे। अब तो यहाँ एक हजार पाँच सौ मीटर की लम्बाई घेरकर नयी इमारतें तामीर कर दी गयी हैं। अब तो चौबीस हजार की इसकी जनसंख्या है। यहाँ तीस स्कूल हैं। सात नर्सरी और किंडरगार्डन मदरसे हैं। पुस्तकालय भी हैं। स्टैंडियम्स भी हैं। अस्पताल तो हैं ही। पैलेस ऑफ कल्चर भी है। सिनेमाघर भी हैं। व्यापार होता है। तमाम दुकानें हैं। श्रमिक लोग भी कविता और साहित्य की रचना करते हैं। पेशेवर कवि नहीं हैं। कवि और कलाकार ताजिकिस्तान के अन्य स्थानों से भी वहाँ आते हैं। मासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। यहाँ नूरेक से सम्बन्धित तीन सौ पुस्तकें हैं, जिन्हें कवियों और साहित्यकारों ने लिखा है। यहाँ के लोग दूसरे नगरों के नाट्य प्रदर्शनों में जाकर भाग लेते हैं और अपनी कला को जनप्रिय बनाते हैं।

फिर हमलोग इस नगर की सोवियत के दफ्तर गये। वहाँ चाय मिली। मिनरल वाटर मिला। हमलोगों ने पिया।

यहाँ की सोवियत, जब कमीशन के अन्तर्गत निर्माण की अनुमति देती है, तब यहाँ निर्माण किया जाता है। यहाँ श्रमिकों को, कर्मकारों को खाद्य-सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती हैं।

यहाँ की शिक्षा, सुरक्षा और स्वास्थ्य की पूरी जिम्मेदारी यहाँ की सोवियत लिये है। काम सुचारु रूप से चलता है। पुलिस-विभाग भी यहाँ की सोवियत के अन्तर्गत काम करता है।

32 / बस्ती खिले गुलाबों की

सन् 1930 की 16वीं पार्टी काँग्रेस ने मास्को में निर्णय लिया था कि ताजिकिस्तान में हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन स्थापित किया जाय। बाँध भी बाँधे जायें, नदी के पानी से असिंचित भूमि को सिंचने के लिये। सन् 1936 में ताजिकिस्तान से सुझाव दिये गये इस सम्बन्ध में।

यहाँ गैस भी घरों में ईंधन के लिए मिलती है। नगर की सफाई का उम्दा प्रबन्ध है। कोई संक्रामक रोग न फैले, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इस काम के लिए 6 डॉक्टर तैनात रहते हैं। 25 आदमी माध्यमिक मेडिकल योग्यता के काम करते हैं। 24 आदमी यहाँ की सफाई का प्रबन्ध करने में जुटे रहते हैं। यहाँ का जल-कल विभाग अपने कर्मचारियों की नियुक्ति करता है और वहीं से उसे सफलतापूर्वक चलाकर पानी दिया करते हैं।

हर चौथे साल यहाँ की 81 चुनी हुई डिपुटी सोवियतें बनती हैं।

वयस्कता की आयु 18 वर्ष की है।

पिछले चुनाव में 12000 लोगों ने मतदान दिये।

यह नूरेक नगर 300 मीटर की ऊँचाई पर बसा है।

कृत्रिम झील 10 किलोमीटर लम्बी है।

लगभग नौ हजार हेक्टर भूमि की सिंचाई होती है।

यहाँ से ही अल्युमिनियम संस्थान को बिजली दी जाती है। दूसरे औद्योगिक संस्थानों को भी यहीं से बिजली पहुँचायी जाती है।

सन् 1962 से सन् 1966 तक इस नगर के निर्माण और यहाँ की सड़कों के बनाने का काम चल रहा था। पहला विद्युत् संचार मई सन् 1973 में शुरू हुआ था।

वक्ष नदी लगभग 400 मीटर लम्बी है।

नूरेक सागर (कृत्रिम झील) में हमें मोटर बोट से घुमाया गया। काफी दूर तक हम गये।

यहाँ से बाँध बाँधने के पूरे क्षेत्र को हमने देखा। इसका बेस 1600 मीटर है और शिखर 1800 मीटर का है।

यहीं होटल में हमने खाना खाया।

फिर 7 बजे शाम दोशाम्बे वापस पहुँच गये।

21/5 को दोशाम्बे स्थित ताजिकिस्तान के लेखक संघ गये। साढ़े दस बजे से पौन बजे तक यहाँ रहे।

यहाँ गुलरुखसारा व गुलचेहरा नाम की दो कवयित्रियों से भेंट हुई। रुखसारा युवा पीढ़ी की हैं। गुलचेहरा अधिक उम्र की हैं।

मीरशकर लम्बे कद के पुरानी पीढ़ी के प्रौढ़ साहित्यकार हैं। मोमिन कनपारा कवि हैं। इन्होंने लेनिनग्राद पर नये शिल्प की एक कविता लिखी है। यह ईरान भी हो आये हैं। वहाँ इन्होंने पी०ई०एन० के जलसे में शिरकत की थी। इन दोनों से भी वहाँ भेंट हुई।

मिखाइल मीरशकर ने लेखक संघ के बारे में बहुत-सी बातें बतायीं। उन्होंने कहा कि उनके लिए भारत जाना-पहचाना देश है। उनके देश से और भारत से बहुत पुराने व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। उनका देश भारत के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ है कि उनके यहाँ की काव्य-पुस्तकें बम्बई में मुद्रित और प्रकाशित हुईं तब, जब उनके यहाँ छापाखाना नहीं था। उनके यहाँ अमीरखुसरो देहलवी की शताब्दी मनाने की योजना बनी है और वह बड़े धूमधाम से मनायी जायगी। महाकवि गालिब और कश्मीर के कवि गनी उनके यहाँ भी प्रख्यात हैं। इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों को समझ में आ जाती है, क्योंकि इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों की भाषा के निकट पड़ती है। स्वर्गीय मुहम्मद इकबाल भी इनके यहाँ पढ़े जाते हैं।

मीरशकर ने आगे बताया कि उनके यहाँ का इतिहास हजारों साल पुराना है। वह गौरवपूर्ण है और संघर्षमय भी है। उनके यहाँ 180 साल तक समानी स्टेट रही। यह रेनेसाँ का वक्त था। परन्तु दुश्मनों के आक्रमण से यह स्टेट खतम हो गयी, विभाजित हो गयी। लोग-बाग आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगे। इस समय की सभ्यता का कवि ताजिक के फारसी साहित्य का पिता अबूअली था। इनकी कविता में दर्द व्यक्त हुआ है।

फिर उन्होंने और बताया कि अक्टूबर-क्रान्ति के पहले उनके यहाँ पाँच प्रतिशत शिक्षा थी। क्रान्ति के बाद शिक्षा सबको उपलब्ध हुई है। उनके यहाँ लोग बड़े भावुक और संवेदनशील हैं। उनके यहाँ के साहित्य के संस्थापक रुदाकी हुए हैं। उन्हें ईरान भी स्वीकार करता है। अब वे लोग हजारवें साल की जुबली मनाने वाले हैं। नयी कविता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि वह मुक्त-छन्द में लिखी होती है। लेकिन वह जनता में लोकप्रिय नहीं हो सकी। उनके बाद श्री मोमिन कनयात ने बताया कि वह युवाकवि हैं। मास्को में एक लाख की जनता, टिकट खरीदकर कवियों की कविताएँ सुनती है। वे कवि जनता के विरुद्ध नहीं होते। कोई कवि किसी शेर या पशु को कविता सुनाकर जन-

जीवन से विमुख होने का दम नहीं भरता। उनके यहाँ की जनता कविता पसन्द करती है और कविता के 'वादों' से घबराती है। हाल में दस दिन तक काव्य-समारोह मनाया गया था। इस समारोह में विभिन्न सोवियतों से आये हुए चौंतीस कवियों ने काव्य-पाठ में भाग लिया था। वे जगह-जगह गये भी थे और वहाँ उन्होंने जनता को अपनी कविताएँ सुनायी थीं। जनता उनकी काव्य-पुस्तकें पढ़ने के लिए ललकती रहती है।

मैं तो इसके पहले यही समझता था कि हम लोग ही अपने देश में कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया करते हैं और कहीं दूसरे देश में ऐसे व्यापक स्तर पर ऐसे आयोजन होते ही नहीं। श्री मोमिन कनयात के मुँह से इसके विपरीत बात जानकर बेहद हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह जानकर दूनी-चौगुनी खुशी और हुई कि वहाँ की जनता काव्य-संग्रह खरीदती और पढ़ती है। हमारे यहाँ की जनता सम्मेलनों में काव्य-पाठ तो सुन लेती है, परन्तु दाम लगाकर काव्य-संग्रह नहीं खरीदती। यह दुर्भाग्य की बात है।

इसके उपरान्त हम अपने होटल आये। वहाँ रहे। डिनर खाया।

फिर ढाई बजे दिन हम ताजिकिस्तान की विज्ञान अकादमी के प्राच्य अध्ययन-संस्थान गये। वहाँ के सहायक डायरेक्टर श्री सैयद मोरादोव हैं। वह दर्शनशास्त्र के डॉक्टर हैं। वहाँ के भारत और पाकिस्तान विभाग की जिम्मेदारी श्रीमती शरफजान पोलोतावा पर है। वह भाषा-विज्ञान की विशेषज्ञ हैं। उन्होंने उर्दू और फारसी भाषाओं पर अनुसन्धान किया है।

कामरेड गुफारोव भी उन्हीं की विद्वत्ता और विशेष योग्यता के हैं।

मालूम हुआ कि अध्ययन-संस्थान की स्थापना अप्रैल, सन् '70 में हुई थी। इस संस्थान में 69 व्यक्ति काम में लगे हैं। इनमें से कुछ टेकनिकल योग्यता के आदमी हैं, कुछ रिसर्च स्कॉलर हैं।

इस संस्थान के 6 भाग हैं। एक भाग अफगानिस्तान से सम्बन्धित है। दूसरा भाग ईरान से, तीसरा भारत और पाकिस्तान से, चौथा अरब देशों से, पाँचवा टेक्सटालोजी से और छठवाँ सभी प्राच्यलिपियों से सम्बन्धित है। इसका सोवियत भूमि में तीसरा स्थान है। यहाँ लगभग बारह हजार पुस्तकें हैं। दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हैं। इसने अबतक किताबों की सूची चार भागों में छापी है। यहाँ कामरेड उसमान अकबर से सम्बन्धित विभागों में काम करते हैं। उर्दू में यह महत्त्वपूर्ण काम चालू है। यह उसमान साहब एक साल तक विशाखापट्टनम में रह आये हैं। यह हम लोगों से उर्दू में बोलते रहे।

हिन्दी में यहाँ काम करते हैं श्री उसमान मुमताज, यह लेनिनग्राद विश्वविद्यालय

के स्नातक रहे हैं। सन् 1968 में यहाँ आये हैं। भाषा-विज्ञान में यह काम करते हैं। यह यहाँ हिन्दी भाषा के क्रियापदों का ताजिक और तुर्की भाषाओं के क्रियापदों से तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।

मुझे इन सब लोगों से मिलकर भारी प्रसन्नता हुई।

फिर वहाँ से हमलोग 3.30 बजे दिन पायनियर पैलेस देखने पहुँचे। वहाँ लड़के-लड़कियों ने हम लोगों का स्वागत किया। हमने उनमें रुचि दिखायी। नतीजा यह हुआ कि वे और हम आत्मीय हो गये। उन्होंने एक गीत भी गाया। पायनियर बच्चे-बच्चियाँ हम लोगों के देश के बालचरों से ज्यादा जिम्मेदार लगे। अभी से समाजवादी उद्देश्य की महत्ता समझते हैं और इसके लिए अपना समय-श्रम सहर्ष देते हैं।

वहाँ से होटल आये। रात 12 बजे श्री गुलाम रब्बानी ताँबा साहब ने अपने होटल के कमरे में हमें फोन करके बुलाया और मीरशकर के दिये हुए पेय से हमारा अभिनन्दन किया। हम लोग दिलचस्प बातें करते रहे और एक-दूसरे के चेहरे देखते रहे। किसी के मुँह पर दुनियाई उदासी न थी। सब हँसमुख और प्रसन्न थे। रात में हमलोग बैले की तरह खिल उठे थे।

मैंने दोशाम्बे पर छोटी-सी एक कविता लिखी-

हँसती पंखुरियों की बस्ती

खिले गुलाबों की

दिलकश देखी

दोशीजा नगरी दोशाम्बे की

22/5 को हमलोग 10 बजे दिन दोशाम्बे से मास्को के लिए हवाई जहाज पर उड़े। पाँच घण्टे में मास्को पहुँचे। फिर रूसिया होटल में ठहरे। मैं बारहवें खण्ड के कमरा नं० 738 में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। आज कहीं नहीं गये। कमरे में श्री सुरेन्द्रकुमार आये। वह वहाँ अनुवाद का काम करते हैं। युवा हैं। सहृदय हैं। उनसे बातें होती रहीं। उन्होंने भी मास्को के वातावरण की और वहाँ के लोगों की तारीफ की। खुले दिल से की। उनके कहने में कोई बनावटी भाव न था। उन्होंने बताया कि उनकी लड़की रात 12 बजे भी अपने कॉलेज के समारोह से अकेली वापस लौटने में कोई खतरा नहीं महसूस करती। वहाँ के लोग बेहूदा हरकतों के आदी नहीं हैं। वहाँ की लड़कियों की

आबरू पर आँच नहीं आने पाती। उन्होंने मुझे हर तरह की सुविधा देने का आश्वासन दिया और चाहा कि मैं कुछ दिन और वहाँ उनके घर में रहकर बिताऊँ और मास्को को पूरी तरह से पहचान लूँ। पर मैं इसके लिए तैयार नहीं हुआ। मुझे अपना वीसा बनवाना पड़ता और यह बात इस प्रोग्राम के बाहर की हो जाती। मैं न रुका।

वहीं उसी कमरे में 15-17 साल से मास्को में रह रहे मधु जी भी आये। उनसे बातें होती रहीं। वे भी खूब बात करते हैं। जो कुछ कहते हैं, साफ कहते हैं। छिपाते कुछ भी नहीं। मास्को की बातें हुईं। उन्होंने भी कुछ ऐसा नहीं बताया कि वहाँ हर आगन्तुक के पीछे 'खुफिया' लगा दी जाती है और लोग बात करते डरते हैं। मैंने पूछा भी। पूछने पर भी यही कहा कि ऐसी बात नहीं है। ऐसा होता तो वह क्या, कोई भी भारतीय वहाँ रह ही नहीं सकता। मिलने-जुलने में रोक-टोक नहीं है। बात करने की मनाही नहीं है। कर्तव्य कीजिए, खाइए-पीजिए और अच्छी जिन्दगी बिताइये। कविता के बारे में मैंने उनसे बातें की। उन्होंने बताया कि रूसी लोग पुश्किन को बहुत बड़ा कवि मानते हैं और उनकी कविता पर तो जी-जान से फिदा हैं। पुश्किन रूसी भाषा का माहिर कवि है। काव्य का सौन्दर्य उसकी कविता में भरा पड़ा है। जब मैंने आधुनिकता की बात चलायी, तो उन्होंने भी बताया कि नये कवि आधुनिकता का काव्य लिखते हैं, पर जनता आधुनिकता से प्रभावित नहीं होती। आधुनिकता से और प्रतिबद्धता से जानी दुश्मनी है। इसीलिए समाजवादी कवि आधुनिकता के व्यक्तिवादी अथवा अहंवादी कथा और शिल्प को नहीं अपनाते।

श्री सुरेन्द्रकुमार ने यह बताया कि मास्को में पेट्रोल, गैस, खाने की चीजें, बच्चों की चीजें और मकान बहुत सस्ते हैं। ट्रांसपोर्ट की सहूलियत खूब अच्छी है। मेडिकल विभाग बड़ा सक्रिय और कर्तव्यनिष्ठ है। बड़ी जल्दी डॉक्टर मिल जाता है। फोन होते ही 15 मिनट के अन्दर वह आ जाता है। पूरी लगन से काम करता है।

रात होटल में ही खाना हुआ। सोये।

23/5 को साढ़े दस बजे दिन हम लोग टैक्सियों से विश्व के महान् उपन्यासकार लियो तालस्ताय का स्मारक देखने के लिए रवाना हुए। वह स्थान मास्को से 180 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। रास्ते में उससे कुछ पहले तूले शहर मिला। वह अच्छा-खासा शहर दिखाई दिया। सड़क से देखा तो दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे पक्के मकान दिखे। सड़क भी साफ-सुथरी और काफी चौड़ी थी। ट्राम चलती नजर आयी। एक महिला को चलाते देखा। मुझे तो उसे देखकर लखनऊ के हजरतगंज की याद आ गयी।

मास्को से यसयाना पोलियाना तक साँप के पेट की तरह चिकनी सपाट एक जैसी, पक्की, चौड़ी सड़क अबाध रूप से सरकती चली गयी है। कहीं ऊँची उठती है, तो कहीं नीचे झुकती है। बहरहाल बिना अंजर-पंजर हिलाये वह यात्रियों को निकल जाने देती है। इसके दोनों तरफ दूर-दूर तक, हाल की उगी हरी फसल की मखमली बिछावन, खेतों में आर-पार बिछी दिखी। खेतों में मेड़ तो कहीं दिखी ही नहीं। उन्हें ट्रैक्टर से जोता बोया जाता है। हाँ, कई जगह मुझे 10-12 महिलाएँ झुके-झुके निराई करती हुई नजर आयीं। उनके कपड़े न फटे थे न गन्दे। वह शरीर से भी पुष्ट और स्वस्थ थीं।

हवा बढ़िया थी। मोटर की खिड़की खोले हवा का संस्पर्श करते हुए हम चले जा रहे थे। आँखों में वहाँ का पूरा-पूरा दृश्य समाया चला जा रहा था। सड़क के दायें-बायें खेतों के किनारों पर, थोड़ी-थोड़ी दूर पर रहायसी पक्की 'काटैजेज' दिखीं। चूँकि सर्दी बहुत पड़ा करती है और बरफ गिरती है, इसलिए वे झोपड़ियाँ सब तरफ से बन्द और सुरक्षित दिखीं। लेकिन कई-कई खिड़कियाँ और द्वार थे उनमें। शायद दोहरे-दोहरे शीशे लगे थे उनमें। ऊपर ढाँचा इनका लकड़ी का बना था। इनके पास व इर्द-गिर्द सेहेन की कुछ भूमि पड़ी थी, जिसमें पेड़-पौधे लगे दिखे। वहीं कहीं-कहीं मुझे मुर्गियाँ घूमती नजर आयीं। लेकिन उस समय मुझे इन झोपड़ियों में आदमी का पुतला तक नहीं दिखाई दिया। सम्भवतः तब सभी व्यक्ति काम-काज पर गये रहे होंगे। बच्चे पढ़ने गये होंगे। सब झोपड़ियाँ निश्चय ही बन्द दिखी थीं। उनमें भीतर बाहर आदमी के साँस की कोई हरकत नहीं नजर आयी। हाँ, जब शाम को लौटे और फिर उन्हें देखते हुए निकले, तो खिड़कियों से भीतर जलती हुई बिजली का प्रकाश दिखाई अवश्य दिया था। इससे समझ सका था कि उनमें लोग-बाग अपने परिवार के साथ रहते हैं।

खेतों में हमारे यहाँ की तरह जानवर छूटे हुए नहीं दिखे। खेतों के इधर-उधर मुझे कोई तार खिंचे हुए नहीं मिले। किसी भी तरह का कोई खतरा फसल के चर जाने का नहीं था। हमारे यहाँ खेत की रखवाली करनी पड़ती है। ऐसी कोई बात मैंने वहाँ नहीं देखी।

इतने बड़े रास्ते में आते-जाते में मुझे एक जगह अपने यहाँ का धैर्य-धन जानवर गदहा वहाँ दिखाई दे ही गया। समाजवादी देश में उसका वहाँ होना इस बात का प्रमाण था कि वह मूर्खता का अवतार ही था।

एक जगह एक बूढ़ा घास लादे घोड़े पर सवार आता दिखा। एक बालक अपनी

पीठ पर घास का पुलन्दा लटकाये राह चलते दिखा। एक जगह एक बूढ़ी औरत खेत में गाय का दूध बाल्टी में दुहती हुई नजर आयी। बैल तो एक भी न दिखाई दिया। अन्य पशु भी वहाँ मुझे नजर नहीं आये।

यासयाना पोलियाना का रकबा बहुत बड़ा है। लम्बे बर्च के पेड़ सघन संख्या में लगे हैं। फर के पेड़ भी हैं। नाला भी दिखाई दिया। जंगल है वहाँ। इसी के अन्दर दूर चलने पर तालस्ताय का एक मौरूसी घर मिला। उसी से हटकर, करीब में ही उनका अपना रहायसी मकान है। पूर्वजों के घर के अन्दर मैं नहीं गया। उन्हीं के मकान में मैं गया। बाहर लम्बे-चौड़े जूते अपने दोनों पैरों में बाँधने पड़े थे। उन्हें पहनकर ही अन्दर चलकर प्रत्येक कमरा देखते रहे थे हमलोग। सीढ़ी थी। उससे चढ़कर ऊपर के कमरों में गये थे। फर्शों पर काठ जड़ दिया गया है। उसी पर होकर चलना पड़ता है। कहा गया कि यह मकान उसी हालत में ज्यों-का-त्यों अब भी है, जैसा तालस्ताय के जमाने में रहा था। उनकी प्रत्येक चीज उसी जगह रखी है, जहाँ जब-तब रखी थी। दीवारों पर उनके और उनके तमाम कुटुम्बियों के फोटोज टँगे हैं। कोई किसी उम्र का है, कोई किसी उम्र का। कोई किसी अवसर का है। कोई किसी अवसर का। बड़े भव्य हैं ये चित्र। सोफिया उनकी पत्नी थीं। उनके भी अनेकों चित्र थे। वह जवानी में बड़ी सुन्दर दिख रही थीं। तालस्ताय की चाची ने उन्हें और उनके बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह अपनी चाची को बहुत मानते थे। उन्हीं के साथ रहते थे। चाची का कमरा अलग था। अन्य लोगों के कमरे भी अलग थे।

सब सुसज्जित हैं। हरेक में हरेक रहनेवाले व्यक्ति की तमाम चीजें यथास्थान रखी हैं। उनके कपड़े टँगे हैं। हाथ की घड़ियाँ टँगी हैं। घुड़सवारी का सामान, जूते इत्यादि भी सुरक्षित हैं। जो उपहार तालस्ताय को समय-समय पर लोगों से मिले थे, वे भी वहाँ मौजूद हैं। पुराने ढंग का ग्रामोफोन भी उनमें से एक है। एक बड़ी-सी घड़ी एक जगह रखी है। उन कमरों में वहाँ फर्नीचर भी हैं, जो तब वहाँ था। हाँ, कुछ-न-कुछ मरम्मत कर दी जाया करती है, ताकि वह नष्ट होने से बचा रहे।

तालस्ताय के पुत्र ऐण्ड्री ने अपनी माँ की मूर्ति बनायी थी। वह वहाँ है। उनका बाजा पियानो भी है। वह पुश्किन के दूर के रिश्तेदार होते थे।

एक अलग प्रकोष्ठ उसी मकान में इसलिए था कि वहाँ तालस्ताय आये हुए व्यक्तियों से गम्भीर बातें करते थे। वहीं वह अपनी रचनाएँ पढ़ते थे।

उन्होंने सन् 1895 में अपने उपन्यास 'रिसरेक्शन' के परिच्छेद ऐण्टन चेखव को पढ़कर सुनाये थे।

वह रूसी लोक-संगीत अत्यधिक पसन्द करते थे।

दो वर्ष की उम्र में उनकी माँ मरीं।

छः वर्ष की उम्र में उनके पिता चल बसे।

इनकी पत्नी सोफिया ने इनके उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' की पाण्डुलिपियाँ सात बार हाथ से लिखी थीं।

इनका उपन्यास 'रिसरेक्शन' दस वर्ष में लिखा गया था। छः बरस में लिखा गया था 'युद्ध और शान्ति'। चार साल में पूरा हुआ था लोकप्रिय उपन्यास 'अन्नाकरीना'।

बताया गया कि उनके इस मकान में उनकी 22 हजार पुस्तकें हैं। इन सबको उन्होंने पढ़ा था। तालस्ताय जबरदस्त पढ़ाकू थे। वह कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

वह अपने यहाँ के किसानों और मजदूरों को बहुत प्रिय थे। वे उनका बहुत आदर करते थे। वे लोग अकेले और संगीसाथियों के साथ तालस्ताय से अकसर मिलने, बातें करने, अपनी समस्यायें बताने और उचित सलाह लेने आते थे। तालस्ताय भी उनसे घिरे रहने में अपने को धन्य समझते थे।

मुझे यह सब देखने-सुनने के बाद महसूस हुआ कि तालस्ताय एक बड़े जमींदार किस्म के शिक्षित बौद्धिक व्यक्ति थे और उनकी रुचि साहित्य में थी ही। अपने समय को वह अच्छी तरह से परखते थे। तब चर्च और बड़े भू-स्वामियों का युग था। वहाँ के खेतिहर शोषित थे। जाबिन के भौतिक मूल्यों का पालन नहीं होता था। स्त्रियाँ पति की दासियाँ थीं। शिक्षा अल्पतम थी। विकास और निर्माण न्यूनतम था। दिल के सहृदय होने की वजह से तालस्ताय जन-सम्पर्क से जनवादी उपन्यासकार बने और भू-स्वामियों की पोलें खोलीं। उनके सजीव और सटीक चित्र खींचे। वहाँ की किलबिल करती जनता भी अपने पूरे परिवेश के साथ सटीक व्यक्त हुई है उनके उपन्यासों में। जीवन की जीवंत और गर्हित दोनों ही झाँकियाँ मिलती हैं। तालस्ताय जनता से प्रतिबद्ध होते चले गये। वह समाजवाद से प्रतिबद्ध नहीं थे। उनकी विचारधारा सुधारवादी थी। वह आदर्शवादी थे। तभी तो वह अन्त में घरबार छोड़कर चले गये और एक स्टेशन में अनजान मर गये। उन्हें उस जीवन से घृणा हो गयी जिसे वह जीते आये थे और जिसे वहाँ की जनता जीने के लिए विवश थी। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता ही नहीं बच रहा था। वह सक्रिय रूप

40 / बस्ती खिले गुलाबों की

से राजनैतिक चेतना के आदमी न थे। भावुक थे इसलिए किसी को मजबूर नहीं कर सकते थे कि वह लाजमी तौर से अच्छा जीवन जिये और शोषण न करे। वह समाजवादी थे। उनकी मानवता लाचार मानवता थी। वह क्रान्तिकारी कार्यक्रम से उद्भूत और संवर्धित मानवता नहीं थी।

उन्होंने अपनी वसीयत में यह लिखा था कि उनकी कब्र पर न तो पत्थर लगाया जाय, न उसे पक्का बनाया जाय। वह उन्हीं की मनोकामना के अनुसार आज तक मिट्टी की साधारण-सी बनी है। उसके चारों तरफ लम्बे बर्च के पेड़ खड़े हैं।

यहाँ का सारा प्रबन्ध सरकार करती है।

एक युवती अंग्रेजी में यह सब बताती थी। उसे हरेक बात जैसे कण्ठस्थ थी।

हमारे साथ के सहयोगी श्री सहालनवीस ने उससे कई बातें पूछीं, जिन्हें वह बता सकी। तालस्ताय अपने अन्तकाल से पूर्व जो पुस्तक पढ़ रहे थे, उसका वह पृष्ठ भी उसने बता दिया। मैं तो चकित रह गया। मैं उस युवती का नाम भूल गया हूँ। फिर भी उसके प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि छुट्टी के दिन भी अपने घर से आकर हम लोगों के साथ वहाँ गयी और घण्टों चक्कर लगाती रही और तालस्ताय के विषय में पूरी जानकारी देती रही।

उसने हमलोगों से पूछा कि तालस्ताय हम लोगों को बहुत प्रिय हैं क्या? तो हम-लोगों ने उसे बताया कि वह बहुत पहले से हमारे देश में पहुँचकर प्रिय हो चुके हैं। हमारा देश भी खेतिहर देश है। इसलिए भी तालस्ताय हमारी जनता को प्रिय हैं। वह भी तो खेतिहरों के कथाकार हैं। धर्म हमारे यहाँ भी बुरी तरह से अपढ़ जनता को जकड़े है। इसलिए भी धर्म से उद्धार पाने के लिए भी हमारे यहाँ तालस्ताय के उपन्यास कई पीढ़ियों से पढ़े जाते हैं। उस युवती को सन्तोष हुआ। उसने फिर पूछा कि क्या भारत में दास्तोवस्की के उपन्यास नहीं पढ़े जाते? क्या वह उपन्यासकार लोकप्रिय नहीं है? हमने बताया कि दास्तोवस्की युवा पीढ़ी को प्रिय हैं। पुरानी पीढ़ी के भारतीयों में वह प्रिय नहीं हो सके। लेकिन हमने इस उपन्यासकार की महत्ता स्वीकार करते हुए यह भी बताया कि हम अभी हाल में ही तो इस उपन्यासकार के म्यूजियम को देखकर यहाँ देखने आये हैं।

इस स्थान में लोगों की भीड़ लगी रहती है। स्थल भी रम्य है। एक झील है। दर्पण की तरह निर्मल उसमें चार बतखें तैर रही थीं। वे बिलकुल दुग्ध धवली थीं। मुझे तो कलहंस याद आ गये थे उन्हें देखकर। न धूल है कहीं—न धुआँ। न शोर न गुल। बाहर

होटल है। एक बुकस्टाल भी था। वहाँ इस स्थान से सम्बन्धित चित्र और पुस्तकें भी मिलती हैं। रूसी भाषा में हैं। अंग्रेजी में भी हैं। लोग लेते हैं, पैसे देते हैं और प्रसन्न-प्रसन्न वापस जाते हैं।

हमने यह स्थान पौने आठ बजे छोड़ा। रास्ते में कई घण्टे लगे। रात ग्यारह बजे होटल में सोये। खाना वहीं से शाम को चलने से पहले खा आये थे। भूख न थी। इससे होटल में डिनर नहीं लिया।

24/5 का दिन हमें मिला था कि हमलोग मास्को में खरीद-फरोख्त कर लें। हमने यही चाहा था।

यही हुआ भी। परन्तु पानी बरसने लगा। मैंने और ताबाँ साहब ने श्री आर०एन० व्यास के साथ कुछ दुकानें देखीं। बच्चों की मशहूर दूकान में भी गये। बच्चों के साथ खिलौनों, कपड़ों, तमाम तरह-तरह के सामान से वह खचाखच भरी थी। सब तरह की भीड़ थी। ठेलमठेल थी। हम लोगों को खरीदते देखते रहे। अच्छा लगा कि समाजवादी शहर में बच्चों के प्रति इतना ध्यान तो दिया जाता है। हम अपने बच्चों की ओर वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रखते जो हमें रखना चाहिए। हम उन्हें अक्ल से खारिज समझते हैं। हम उनकी भावनाओं की कतई परवाह नहीं करते। हम उन्हें बकरी के बच्चों की तरह रखते हैं—बन्दरों की तरह मारपीट से सीधा करते हैं। उन्हें सताते हैं और अपनी तरह बनाने का धर्म निबाहते हैं। हम यह नहीं देखते कि उसकी रुचि किस तरह की है? इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा न अपने परिवेश से जुड़ पाता है; न हमसे आत्मीय हो पाता है, न उसकी प्रतिभा का विकास होता है, न वह देश को अपना देश समझता है। वह तो वैयक्तिक इकाई बनाकर अपने स्वार्थ का जीवन जीने के लिए तैयार भर कर दिया जाता है। खिलौने निर्जीव अवश्य होते हैं, परन्तु वे बच्चों की प्रवृत्तियों को संस्कार देते हैं और अपने माध्यम से पूरे देश के परिवेश से जोड़ते हैं और उनमें देश-प्रेम की नींव डालते हैं। खिलौने बेकार नहीं होते। निर्जीव होकर भी वह सबसे अधिक ममता और प्यार देते हैं बच्चों को। बेचारे बालक की हरतरह की गुस्ताखी बरदाश्त करते हैं। जहाँ फेंक दिये गये पड़े रहते। तोड़ दिये गये तो उफ तक नहीं करते। फिर उठा लिये गये तो फिर जी उठते हैं। उसी दिल से बच्चों को बहलाते हैं, जिस दिल से वह पहले-पहल बहला सके थे। उनका स्नेह कम नहीं होता। मैंने भी कुछ चीजें खरीदीं। फिर शाम को 6 बजे होटल में नोबस्ती न्यूज एजेन्सी वालों की तरफ से हम लोगों का डिनर था। मैं देर से पहुँचा, पानी बरस रहा था। दूकान में सौदा लेने में देर हो गयी। फिर टैक्सी न मिल सकी। एक उदार रूसी ने हमें भीगता देखकर हमपर कृपा

की और हमें होटल तक छोड़ गये। हम उसे किराया देने लगे, तो उसने नहीं लिया। शायद वह हमें भारतीय समझकर हमसे सहृदयता व्यक्त कर रहा था। हम उसके आभारी हुए। जब डिनर की मेज पर पहुँचे, तो कुछ लोग चले गये थे। हमने डिनर खाया। बातें की।

यह वहाँ से प्रस्थान की बेला थी। रात को ही होटल से मास्को के हवाई अड्डे पर पहुँचना था, इसीलिए आखिरी बार जी भरकर सब को देख लेना चाहते थे। फिर आने का अवसर मिले न मिले। श्री सुरेन्द्रकुमार थे। पं० हरिदत्त शर्मा वहीं उनके यहाँ रुककर पोलैण्ड और पूर्व जर्मनी जाने का प्रोग्राम बनाये थे। इससे वह उधर उनके यहाँ गये और हमलोग कारों में बैठकर हवाई अड्डे गये। रात में वहाँ वायुयान से उड़कर सबेरे पहर दिल्ली पहुँच जाना था। 25/5 तक हम वहाँ रह सकते थे, पर 26/5 को वहाँ से कोई हवाई जहाज दिल्ली न जाता था, इसलिए 24 और 25 मई के बीच की रात को ही हम वहाँ से चलते कर दिये गये।

हमारा यान सीधे दिल्ली न जा सका। मौसम खराब था। धूल-धुन्ध छायी थी दिल्ली के आसपास कि उसका वहाँ उतरना असम्भव था। इसलिए दिल्ली के पहले ही उसे आदेश हुआ कि वह वहाँ न आये। मरता क्या न करता। चालक उसे कराँची हवाई अड्डे पर लाया। वहाँ हम उतरे। एक बड़े से हाल में ठहरे रहे। चाय-पानी का प्रबन्ध भी न था वहाँ। हमारे यान की ओर से भी प्रबन्ध किया जाना जल्दी में असम्भव था। वह लोग कर ही रहे थे कुछ-न-कुछ इन्तजाम कि एक घण्टा में सूचना आ गयी कि दिल्ली साफ है चल दो। हम खुश हुए। सब फिर उड़े और दिल्ली में आ धरे सकुशल। वहाँ सम्बन्धी आये थे। उन्होंने राहत की साँस ली। फिर हमने मातृभूमि के दर्शन किये और सबसे मिले।

यह 25/5 याद रहेगी विशेष रूप से कि इस दिन हम कराँची के हवाई अड्डे पर उतरे थे, जहाँ हम दुश्मन थे। इस दिन हम वहाँ से दिल्ली सही सलामत आ गये। इस दिन हमने एक ऐतिहासिक यात्रा समाप्त की थी और अपने देश के प्रति अधिक कर्तव्यनिष्ठ होकर लौटे थे।

मैं कई दिन तक दिल्ली में ही अपने दामाद के यहाँ रहा। 27/5 को प्रेस कान्फ्रेंस हुई। उसमें अंग्रेजी में अपनी बात कही गयी। मैंने हिन्दी में अपने ढंग से वह सबकुछ संक्षेप में कहा, जो मुझे कहना था।

मैंने एक लेख भी लिखा 'समाजवादी समाज में लेखक का दायित्व।' इसे मैंने

‘सोवियत भूमि’ में दिया। यह लेख ‘जनयुग’, ‘जनशक्ति’, ‘आज’ आदि कई जगहों के अखबारों में छपा।

आगरा गया। वहाँ भी अपनी इस यात्रा का विवरण सुनाया।

फिर अपने शहर बाँदा आया। यहाँ भी एक सभा में मैंने अनुभव सुनाये। यही सब बातें अपने लोगों को बतायीं, जो बातें मैंने इस सफरनामों में लिखी हैं।

प्रश्नों के समय लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या मैं रूस में किसी नागरिक के घर गया और उसका घरू-पारिवारिक जीवन देखा और यह जानने का प्रयास किया कि गृहस्थी कैसे चलती है? मैंने उत्तर में कहा कि यह तो मैंने नहीं किया। हमारे प्रोग्राम में यह नहीं था। मैं लोगों की इस जिज्ञासा को समझता हूँ। ऐसा प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है। इसका उत्तर साक्ष्य-सहित मिलना चाहिए था। मैं न दे सका। इसका दोषी मैं नहीं, वह न्यूज एजेन्सी है, जिसने हमारी यात्रा का प्रोग्राम बनाया था। हो सकता है कि यदि हम जोर देते और कहते, तो वह हमें किसी भी नागरिक के घर ले जाते और उसका घरू जीवन दिखाते। किन्तु इतना कुछ देखना-दाखना था कि इस ओर ध्यान ही नहीं गया और यह जानकारी न हो सकी। लेकिन एक बात इस सम्बन्ध में कह दूँ, आवश्यक है।

मैं जानता हूँ कि कोई व्यवस्था क्यों न हो, सबकुछ पूरा-का-पूरा जीवन व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसकी वजह यह है कि लोग-बाग अभी भी अपने दैनिक घरू जीवन में अपने पहले के संस्कारों से लिस रहकर ही उन्हीं के मुताबिक अपना आचरण करने के अभ्यस्त हैं। पहले के संस्कार जल्दी नहीं जाते। वे टूटते हैं, पर कई दशकों में। इसलिए मैं मानकर चलता हूँ कि रूसी नागरिक का घरेलू जीवन वैसा ही न होगा, जैसा रूस का बाहरी जीवन जैसे मैंने वहाँ देखा है, लेकिन इससे रूस की समाजवादी व्यवस्था को बुरा नहीं कहा जा सकता। वह व्यवस्था भरपूर प्रयास करती रहती है कि प्रत्येक नागरिक का घरेलू जीवन भी सुखी और सम्पन्न हो। तभी तो अब वहाँ आवश्यक वस्तुएँ सुलभ कर दी गयी हैं। रहने के लिए मकान दिये जा रहे हैं। सबको काम दिया जा रहा है। सबके स्वास्थ्य की देखरेख की जा रही है। बच्चों की पूरी तरह से निगरानी की जा रही है। बुढ़ापे में पेंशन दी जाती है। बीमारी में दवा। और जहाँ तक सवाल है मियाँ-बीवी का, वह भी अपनी जिम्मेदारियाँ समझते हैं और पारस्परिक व्यवहार में एक-दूसरे का ख्याल रखते हैं। इस पर भी अगर न पटे, तो तलाक ले लें और अपना घरेलू जीवन अपनी स्वेच्छा के अनुसार चलायें। सरकार घर के अन्दर घुसकर उन्हें एक-दूसरे का क्रीतदास नहीं बनाये रख सकती। क्या हमलोग अपने घरों में तनाव में नहीं रहते? क्या

44 / बस्ती खिले गुलाबों की

हमलोग नहीं लड़ते-झगड़ते? क्या हम अपने भाई-भतीजों के प्रति उतने ही सहृदय होते हैं, जितने अपने बच्चों के प्रति? तो बुराइयाँ तो घर-घर में रहेंगी ही, चाहे वह घर समाजवादी का हो, चाहे गैर समाजवादी का। यह तो प्रत्येक नागरिक पर निर्भर करता है कि वह किस हद तक अपना घरेलू जीवन सुखी और सम्पन्न बनाये। इसलिए इस सम्बन्ध में जानकारी हासिल भी कर लेता, तो भी बात साफ न हो पाती।

अन्त में एक बात और कहूँगा, हो सकता है कि मैंने जिन व्यक्तियों और स्थानों के नाम दिये हैं, उनके उच्चारण मैं न समझ सका होऊँ और यहाँ उन्हें गलत लिख गया होऊँ। वे और पाठक मुझे क्षमा करेंगे। मैं बाद को पता लगाकर सही कर दूँगा।



केदारनाथ अप्रवाह
का खना संसार

